॥ श्रीहरिः ॥

261

भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान

गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR

जयदयाल गोयन्दका

॥ श्रीहरिः ॥

भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

सम्पादक—जयदयाल गोयन्दका

॥ श्रीहरि: ॥

नम्र निवेदन

धर्मका फल है—संसारके बन्धनोंसे मुक्ति और भगवत्प्राप्ति। इस धर्माचरणका ज्ञान पुराणोंके श्रवण-मनन आदिसे भलीभाँति हो सकता है। वेदोंके समान ही पुराण भी धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष—इस चतुर्विध पुरुषार्थके उपदेशक हैं। पुराणोंमें भी पद्मपुराणका स्थान विशिष्ट है। इसे श्रीभगवान्‌के पुराणरूप विग्रहका हृदय माना गया है—'**हृदयं पद्मसंज्ञकम्**'। वैष्णवोंका तो यह सर्वस्व ही है।

पद्मपुराणमें भगवद्भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, तपश्चर्या, देवाराधन, तीर्थ, व्रत, दान, धर्म आदि अनेक विषयोंके विशद विवेचनके साथ अनेकों शिक्षाप्रद उपाख्यान और कल्याणकारी कथाएँ हैं, जिनके आदर्श चरित्र सत्य, धर्म और नीतिका गहन शिक्षण देनेके साथ आध्यात्मिक चेतना जाग्रत् करके आत्म-कल्याणका मार्ग प्रशस्त करते हैं।

प्रस्तुत पुस्तकमें पद्मपुराण-सृष्टिखण्डसे संकलित पाँच कथाओंका संग्रह है, इनमें उच्चकोटिके सरल और प्रेरणाप्रद चरित्रोंके माध्यमसे साररूपमें यह बतलाया गया है कि सर्वव्यापक भगवान् श्रीहरि विशेषरूपसे किन-किन स्थानोंपर निवास करते हैं। गीताप्रेससे प्रकाशित पद्मपुराणके संक्षिप्त हिन्दी रूपान्तरका सम्पादन परम श्रद्धेय ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दकाद्वारा सरल, सुबोध भाषा-शैलीमें बहुत पहले किया गया था (जो ग्रन्थाकारमें आज भी उपलब्ध है), उसीसे ली गयी मूक चाण्डाल, तुलाधार वैश्य, नरोत्तम ब्राह्मण आदिकी सुप्रसिद्ध शिक्षाप्रद कथाओंका यह संकलन सबके हितलाभके लिये प्रकाशित किया गया है।

इस पुस्तकके पठन-पाठन और मननद्वारा इन महान् चरित्रोंकी विशेषताओंका अनुसरण एवं धारण करनेसे जीवनमें निश्चित परिवर्तन हो सकता है—ऐसा हमारा विश्वास है। सरल, सुबोध भाषामें प्रस्तुत यह पुस्तक सभी वर्गके पाठकोंके लिये अत्यन्त उपयोगी है। अतएव सभी लोगोंको इससे अधिकाधिक लाभ उठाना चाहिये।

—**प्रकाशक**

अमूल्य वचन

"ऐसी चेष्टा करनी चाहिये, जिससे एकान्त स्थानमें अकेलेका ही मन प्रसन्नतापूर्वक स्थिर रहे। प्रफुल्लित चित्तसे एकान्तमें श्वासके द्वारा निरन्तर नामजप करनेसे ऐसा हो सकता है।"

"भगवत्प्रेम एवं भक्ति-ज्ञान-वैराग्य-सम्बन्धी शास्त्रोंको पढ़ना चाहिये।"

"एकान्त देशमें ध्यान करते समय चाहे किसी भी बातका स्मरण क्यों न हो, उसको तुरन्त भुला देना चाहिये। इस संकल्पत्यागसे बड़ा लाभ होता है।"

"धनकी प्राप्तिके उद्देश्यसे कार्य करनेपर मन संसारमें रम जाता है, इसलिये सांसारिक कार्य बड़ी सावधानीके साथ केवल भगवत्‌की प्रीतिके लिये ही करना चाहिये। इस प्रकारसे भी अधिक कार्य न करे, क्योंकि कार्यकी अधिकता उद्देश्यमें परिवर्तन हो जाता है।"

"सांसारिक पदार्थों और मनुष्योंसे मिलना-जुलना कम रखना चाहिये।"

"संसार-सम्बन्धी बातें बहुत ही कम करनी चाहिये।"

"बिना पूछे न तो किसीके अवगुण बताने चाहिये और न उनकी तरफ ध्यान ही देना चाहिये।"

॥ श्रीहरिः ॥

भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान

पाँच महायज्ञ

व्यासजी बोले—शिष्यगण! मैं तुमलोगोंको पाँच धर्मोंके आख्यान सुनाऊँगा। उन पाँचोंमेंसे एकका भी अनुष्ठान करके मनुष्य सुयश, स्वर्ग तथा मोक्ष भी पा सकता है। माता-पिताकी पूजा, पतिकी सेवा, सबके प्रति समान भाव, मित्रोंसे द्रोह न करना और भगवान् श्रीविष्णुका भजन करना—ये पाँच महायज्ञ हैं। ब्राह्मणो! पहले माता-पिताकी पूजा करके मनुष्य जिस धर्मका साधन करता है, वह इस पृथ्वीपर सैकड़ों यज्ञों तथा तीर्थयात्रा आदिके द्वारा भी दुर्लभ है। पिता धर्म है, पिता स्वर्ग है और पिता ही सर्वोत्कृष्ट तपस्या है। पिताके प्रसन्न हो जानेपर सम्पूर्ण देवता प्रसन्न हो जाते हैं। जिसकी सेवा और सद्‌गुणोंसे पिता-माता सन्तुष्ट रहते हैं, उस पुत्रको प्रतिदिन गंगास्नानका फल मिलता है। माता सर्वतीर्थमयी है और पिता सम्पूर्ण देवताओंका स्वरूप है; इसलिये सब प्रकारसे यत्नपूर्वक माता-पिताका पूजन करना चाहिये। जो माता-पिताकी प्रदक्षिणा करता है, उसके द्वारा सातों द्वीपोंसे युक्त समूची पृथ्वीकी परिक्रमा हो जाती है। माता-पिताको प्रणाम करते समय जिसके हाथ, मस्तक और घुटने पृथ्वीपर टिकते हैं, वह अक्षय स्वर्गको प्राप्त होता है।* जबतक माता-पिताके चरणोंकी

---

* पित्रोरर्चाथ पत्युश्च समः (साम्यं) सर्वजनेषु च । मित्राद्रोहो विष्णुभक्तिरेते पञ्च महामखाः ॥
प्राक् पित्रोरर्चया विप्रा यद्धर्मं साधयेन्नरः । न तत्क्रतुशतैरेव तीर्थयात्रादिभिर्भुवि ॥
पिता धर्मः पिता स्वर्गः पिता हि परमं तपः । पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः ॥
पितरो यस्य तृप्यन्ति सेवया च गुणेन च । तस्य भागीरथीस्नानमहन्यहनि वर्तते ॥
सर्वतीर्थमयी माता सर्वदेवमयः पिता । मातरं पितरं तस्मात् सर्वयत्नेन पूजयेत् ॥
मातरं पितरं चैव यस्तु कुर्यात् प्रदक्षिणम् । प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा ॥
जानुनी च करौ यस्य पित्रोः प्रणमतः शिरः । निपतन्ति पृथिव्यां च सोऽक्षयं लभते दिवम् ॥
(पद्मपु०, सृष्टिख० ४७। ७—१३)

रज पुत्रके मस्तक और शरीरमें लगती रहती है, तभीतक वह शुद्ध रहता है। जो पुत्र माता-पिताके चरण-कमलोंका जल पीता है, उसके करोड़ों जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं। वह मनुष्य संसारमें धन्य है। जो नीच पुरुष माता-पिताकी आज्ञाका उल्लंघन करता है, वह महाप्रलय पर्यन्त नरकमें निवास करता है। जो रोगी, वृद्ध, जीविकासे रहित, अंधे और बहरे पिताको त्यागकर चला जाता है, वह रौरव नरकमें पड़ता है।* इतना ही नहीं, उसे अन्त्यजों, म्लेच्छों और चाण्डालोंकी योनिमें जन्म लेना पड़ता है। माता-पिताका पालन-पोषण न करनेसे समस्त पुण्योंका नाश हो जाता है। माता-पिताकी आराधना न करके पुत्र यदि तीर्थ और देवताओंका भी सेवन करे तो उसे उसका फल नहीं मिलता।

ब्राह्मणो! इस विषयमें मैं एक प्राचीन इतिहास कहता हूँ, यत्नपूर्वक उसका श्रवण करो। इसका श्रवण करके भूतलपर फिर कभी तुम्हें मोह नहीं व्यापेगा।

पूर्वकालकी बात है—नरोत्तम नामसे प्रसिद्ध एक ब्राह्मण था। वह अपने माता-पिताका अनादर करके तीर्थ-सेवनके लिये चल दिया। सब तीर्थोंमें घूमते हुए उस ब्राह्मणके वस्त्र प्रतिदिन आकाशमें ही सूखते थे। इससे उसके मनमें बड़ा भारी अहंकार हो गया। वह समझने लगा, मेरे समान पुण्यात्मा और महायशस्वी दूसरा कोई नहीं है। एक दिन वह मुख ऊपरकी ओर करके यही बात कह रहा था, इतनेमें ही एक बगुलेने उसके मुँहपर बीट कर दी, तब ब्राह्मणने क्रोधमें आकर उसे शाप दे दिया। बेचारा बगुला राखकी ढेरी बनकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। बगुलेकी मृत्यु होते ही नरोत्तमके भीतर महामोहने प्रवेश किया। उसी पापसे अब ब्राह्मणका वस्त्र आकाशमें नहीं ठहरता था। यह जानकर उसे बड़ा खेद हुआ। तदनन्तर आकाशवाणीने कहा—'ब्राह्मण! तुम परम धर्मात्मा मूक चाण्डालके

---

* रोगिणं चापि वृद्धं च पितरं वृत्तिकर्शितम्। विकलं नेत्रकर्णाभ्यां त्यक्त्वा गच्छेच्च रौरवम्॥
(पद्मपु०, सृष्टिख० ४७।१९)

पास जाओ। वहाँ जानेसे तुम्हें धर्मका ज्ञान होगा। उसका वचन तुम्हारे लिये कल्याणकारी होगा।'

यह आकाशवाणी सुनकर ब्राह्मण मूक चाण्डालके घर गया। वहाँ जाकर उसने देखा, वह चाण्डाल सब प्रकारसे अपने माता-पिताकी सेवामें लगा है। जाड़ेके दिनोंमें वह अपने माँ-बापको स्नानके लिये गरम जल देता, उनके शरीरमें तेल मलता, तापनेके लिये अंगीठी जलाता, भोजनके पश्चात् पान खिलाता और रूईदार कपड़े पहननेको देता था। प्रतिदिन मिष्टान्न भोजनके लिये परोसता और वसन्त-ऋतुमें महुएकी सुगन्धित माला पहनाता था। इनके लिये और भी जो भोग-सामग्रियाँ प्राप्त होतीं, उन्हें देता और भाँति-भाँतिकी आवश्यकताएँ पूर्ण किया करता था। गर्मीके मौसममें प्रतिदिन माता-पिताको पंखा झलता था। इस प्रकार नित्यप्रति उनकी परिचर्या करके ही वह भोजन करता था। माता-पिताकी थकावट और कष्टका निवारण करना उसका सदाका नियम था। इन पुण्य कर्मोंके कारण चाण्डालका घर बिना किसी आधार और खंभेके आकाशमें स्थित था। उसके अन्दर त्रिभुवनके स्वामी भगवान् श्रीहरि मनोहर ब्राह्मणका रूप धारण किये नित्य क्रीड़ा करते थे। वे सत्यस्वरूप परमात्मा अपने महान् सत्यमय तेजस्वी विग्रहसे उस चाण्डाल-मन्दिरकी शोभा बढ़ाते थे। वह सब देखकर ब्राह्मणको बड़ा विस्मय हुआ। उसने मूक चाण्डालसे कहा—'तुम मेरे पास आओ, मैं तुमसे सम्पूर्ण लोकोंके सनातन हितकी बात पूछता हूँ; उसे ठीक-ठीक बताओ।'

मूक चाण्डाल बोला—विप्र! इस समय मैं माता-पिताकी सेवा कर रहा हूँ, आपके पास कैसे आऊँ? इनकी पूजा करके आपकी आवश्यकता पूर्ण करूँगा; तबतक मेरे दरवाजेपर ठहरिये, मैं आपका अतिथि-सत्कार करूँगा।

चाण्डालके इतना कहते ही ब्राह्मणदेवता आगबबूला हो गये और

बोले—'मुझ ब्राह्मणकी सेवा छोड़कर तुम्हारे लिये कौन-सा कार्य बड़ा हो सकता है।'

चाण्डाल बोला—बाबा! क्यों व्यर्थ कोप करते हो, मैं बगुला नहीं हूँ। इस समय आपका क्रोध बगुलेपर ही सफल हो सकता है, दूसरे किसीपर नहीं। अब आपकी धोती न तो आकाशमें सूखती है और न ठहर ही पाती है। अतः आकाशवाणी सुनकर आप मेरे घरपर आये हैं। थोड़ी देर ठहरिये तो मैं आपके प्रश्नका उत्तर दूँगा; अन्यथा पतिव्रता स्त्रीके पास जाइये। द्विजश्रेष्ठ! पतिव्रता स्त्रीका दर्शन करनेपर आपका अभीष्ट सिद्ध होगा।

व्यासजी कहते हैं—तदनन्तर, चाण्डालके घरसे ब्राह्मणरूपधारी भगवान् श्रीविष्णुने निकलकर उस द्विजसे कहा—'चलो, मैं पतिव्रता देवीके घर चलता हूँ।' द्विजश्रेष्ठ नरोत्तम कुछ सोचकर उनके साथ चल दिया। उसके मनमें बड़ा विस्मय हो रहा था। उसने रास्तेमें भगवान्‌से पूछा—'विप्रवर! आप इस चाण्डालके घरमें जहाँ स्त्रियाँ रहती हैं, किसलिये निवास करते हैं?'

ब्राह्मणरूपधारी भगवान्‌ने कहा—विप्रवर! इस समय तुम्हारा हृदय शुद्ध नहीं है; पहले पतिव्रता आदिका दर्शन करो, उसके बाद मुझे ठीक-ठीक जान सकोगे।

ब्राह्मणने पूछा—तात! पतिव्रता कौन है? उसका शास्त्र-ज्ञान कितना बड़ा है? जिस कारण मैं उसके पास जा रहा हूँ, वह भी मुझे बतलाइये।

श्रीभगवान् बोले—ब्रह्मन्! नदियोंमें गंगाजी, स्त्रियोंमें पतिव्रता और देवताओंमें भगवान् श्रीविष्णु श्रेष्ठ हैं। जो पतिव्रता नारी प्रतिदिन अपने पतिके हित-साधनमें लगी रहती है, वह अपने पितृकुल और पतिकुल दोनों कुलोंकी सौ-सौ पीढ़ियोंका उद्धार कर देती है।*

---

* पतिव्रता च या नारी पत्युर्नित्यं हिते रता। कुलद्वयस्य पुरुषानुद्धरेत्सा शतं शतम्॥
(पद्मपु०, सृष्टिख० ४७।५१)

ब्राह्मणने पूछा—द्विजश्रेष्ठ! कौन स्त्री पतिव्रता होती है? पतिव्रताका क्या लक्षण है? मैं जिस प्रकार इस बातको ठीक-ठीक समझ सकूँ, उस प्रकार उपदेश कीजिये।

श्रीभगवान् बोले—जो स्त्री पुत्रकी अपेक्षा सौगुने स्नेहसे पतिकी आराधना करती है, राजाके समान उसका भय मानती है और पतिको भगवान्‌का स्वरूप समझती है, वह पतिव्रता है। जो गृहकार्य करनेमें दासी, रमणकालमें वेश्या, भोजनके समयमें माताके समान आचरण करती है और जो विपत्तिमें स्वामीको नेक सलाह देकर मन्त्रीका काम करती है, वह स्त्री पतिव्रता मानी गयी है। जो मन, वाणी, शरीर और क्रियाओंद्वारा कभी पतिकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं करती तथा हमेशा पतिके भोजन कर लेनेपर ही भोजन करती है, उस स्त्रीको पतिव्रता समझना चाहिये। जिस-जिस शय्यापर पति शयन करते हैं वहाँ-वहाँ जो प्रतिदिन यत्नपूर्वक उनकी पूजा करती है, पतिके प्रति कभी जिसके मनमें डाह नहीं पैदा होती, कृपणता नहीं आती और जो मान भी नहीं करती, पतिकी ओरसे आदर मिले या अनादर—दोनोंमें जिसकी समान बुद्धि रहती है, ऐसी स्त्रीको पतिव्रता कहते हैं। जो साध्वी स्त्री सुन्दर वेषधारी परपुरुषको देखकर उसे भ्राता, पिता अथवा पुत्र मानती है, वह भी पतिव्रता है।* द्विजश्रेष्ठ! तुम उस पतिव्रताके पास जाओ और उसे अपना मनोरथ कह सुनाओ। उसका नाम शुभा है। वह रूपवती युवती है, उसके हृदयमें दया भरी है। वह बड़ी यशस्विनी है। उसके पास जाकर तुम अपने हितकी बात पूछो।

---

* पुत्राच्छतगुणं स्नेहाद्राजानं च भयादथ। आराधयेत् पतिं शौरिं या पश्येत् सा पतिव्रता॥
कार्ये दासी रतौ वेश्या भोजने जननीसमा। विपत्सु मन्त्रिणी भर्तुः सा च भार्या पतिव्रता॥
भर्तुराज्ञां न लङ्घेद्या मनोवाक्कायकर्मभिः। भुक्ते पतौ सदाचात्ति सा च भार्या पतिव्रता॥
यस्यां यस्यांतु शय्यायां पतिस्स्वपिति यत्नतः। तत्र तत्र च सा भर्तुरर्चां करोति नित्यशः॥
नैव मत्सरतां याति न कार्पण्यं न मानिनी। मानेऽमाने समानत्वं या पश्येत् सा पतिव्रता॥
सुवेषं या नरं दृष्ट्वा भ्रातरं पितरं सुतम्। मन्यते च परं साध्वी सा च भार्या पतिव्रता॥
(पद्मपु०, सृष्टिख० ४७। ५५—६०)

व्यासजी कहते हैं—यों कहकर भगवान् वहीं अन्तर्धान हो गये। उन्हें अदृश्य होते देख ब्राह्मणको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने पतिव्रताके घर जाकर उसके विषयमें पूछा। अतिथिकी बोली सुनकर पतिव्रता स्त्री वेगपूर्वक घरसे निकली और ब्राह्मणको आया देखकर दरवाजेपर खड़ी हो गयी। ब्राह्मणने उसे देखकर प्रसन्नतापूर्वक उससे कहा—'देवि! तुमने जैसा देखा और समझा है उसके अनुसार स्वयं ही सोचकर मेरे लिये प्रिय और हितकी बात बताओ।'

पतिव्रता बोली—ब्रह्मन्! इस समय मुझे पतिदेवकी पूजा करनी है, अतः अवकाश नहीं है; इसलिये आपका कार्य पीछे करूँगी। इस समय मेरा आतिथ्य ग्रहण कीजिये।

ब्राह्मण बोला—कल्याणी! मेरे शरीरमें इस समय भूख-प्यास और थकावट नहीं है। मुझे अभीष्ट बात बताओ, नहीं तो तुम्हें शाप दे दूँगा।

तब उस पतिव्रताने भी कहा—'द्विजश्रेष्ठ! मैं बगुला नहीं हूँ, आप धर्म तुलाधारके पास जाइये और उन्हींसे अपने हितकी बात पूछिये।' यों कहकर वह महाभागा पतिव्रता घरके भीतर चली गयी। तब ब्राह्मणने चाण्डालके घरकी भाँति वहाँ भी विप्ररूपधारी भगवान्‌को देखा। उन्हें देखकर वह बड़ा विस्मयमें पड़ा और कुछ सोच-विचार-कर उनके समीप गया। घरमें जानेपर उसे हर्षमें भरे हुए ब्राह्मण और उस पतिव्रताके भी दर्शन हुए। उन्हें देखकर नरोत्तम ब्राह्मणने कहा—'तात! देशान्तरमें जो घटना घटी थी, उसे इस पतिव्रता देवीने भी बता दिया और चाण्डालने तो बताया ही था। ये लोग उस घटनाको कैसे जानते हैं? इस बातको लेकर मुझे बड़ा विस्मय हो रहा है। इससे बढ़कर महान् आश्चर्य और क्या हो सकता है।'

श्रीभगवान् बोले—तात! महात्मा पुरुष अत्यन्त पुण्य और सदाचारके बलपर सबका कारण जान लेते हैं, जिससे तुम्हें विस्मय हुआ है। मुने! बताओ, इस समय उस पतिव्रताने तुमसे क्या कहा है?

ब्राह्मणने कहा—वह तो मुझे धर्म तुलाधारसे प्रश्न करनेके लिये उपदेश देती है।

श्रीभगवान् बोले—'मुनिश्रेष्ठ! आओ, मैं उसके पास चलता हूँ।' यों कहकर भगवान् जब चलने लगे, तब ब्राह्मणने पूछा—'तुलाधार कहाँ रहता है?'

श्रीभगवान्‌ने कहा—जहाँ मनुष्योंकी भीड़ एकत्रित है और नाना प्रकारके द्रव्योंकी बिक्री हो रही है, उस बाजारमें तुलाधार वैश्य इधर-उधर क्रय-विक्रय करता है। उसने कभी मन, वाणी या क्रिया द्वारा किसीका कुछ बिगाड़ नहीं किया, असत्य नहीं बोला और दुष्टता नहीं की। वह सब लोगोंके हितमें तत्पर रहता है। सब प्राणियोंमें समान भाव रखता है तथा ढेले-पत्थर और सुवर्णको समान समझता है। लोग जौ, नमक, तेल, घी, अनाजकी ढेरियाँ तथा अन्यान्य संगृहीत वस्तुएँ उसकी जबानपर ही लेते-देते हैं। वह प्राणान्त उपस्थित होनेपर भी सत्य छोड़कर कभी झूठ नहीं बोलता। इसीसे वह धर्म-तुलाधार कहलाता है।

श्रीभगवान्‌के यों कहनेपर ब्राह्मणने नाना प्रकारके रसोंको बेचते हुए तुलाधारको देखा। वह बिक्रीकी वस्तुओंके सम्बन्धमें बातें कर रहा था। बहुत-से पुरुष और स्त्रियाँ उसे चारों ओरसे घेरकर खड़ी थीं। ब्राह्मणको उपस्थित देखकर तुलाधारने मधुर वाणीमें पूछा—'ब्रह्मन्! यहाँ कैसे पधारना हुआ?'

ब्राह्मणने कहा—मुझे धर्मका उपदेश करो, मैं इसीलिये तुम्हारे पास आया हूँ।

तुलाधार बोला—विप्रवर! जबतक लोग मेरे पास रहेंगे, तबतक मैं निश्चिन्त नहीं हो सकूँगा। पहरभर राततक यही हालत रहेगी। अतः आप मेरा उपदेश मानकर धर्माकरके पास जाइये। बगुलेकी मृत्युसे होनेवाला दोष और आकाशमें धोती सुखानेका रहस्य—ये सभी बातें आगे आपको मालूम हो जायँगी। धर्माकरका नाम अद्रोहक है। वे बड़े सज्जन हैं। उनके पास जाइये। वहाँ उनके उपदेशसे आपकी कामना सफल होगी।

यों कहकर तुलाधार खरीद-बिक्रीमें लग गया। नरोत्तमने विप्ररूपधारी भगवान्‌से पूछा—'तात! अब मैं तुलाधारके कथनानुसार सज्जन अद्रोहकके पास जाऊँगा। परंतु मैं उनका घर नहीं जानता।'

श्रीभगवान् बोले—चलो, मैं तुम्हारे साथ उनके घर चलूँगा।

तदनन्तर मार्गमें जाते हुए भगवान्‌से ब्राह्मणने पूछा—'तात! तुलाधार न तो देवताओंका एवं ऋषियोंका और न पितरोंका ही तर्पण करता है। फिर देशान्तरमें संघटित हुए मेरे वृत्तान्तको यह कैसे जानता है? इससे मुझे बड़ा विस्मय हो रहा है। आप इसका सब कारण बताइये।

श्रीभगवान् बोले—ब्रह्मन्! उसने सत्य और समतासे तीनों लोकोंको जीत लिया है; इसीसे उसके ऊपर पितर, देवता तथा मुनि भी सन्तुष्ट रहते हैं, धर्मात्मा तुलाधार उपर्युक्त गुणोंके कारण ही भूत और भविष्यकी सब बातें जानता है। सत्यसे बढ़कर कोई धर्म और झूठसे बड़ा दूसरा कोई पाप नहीं है।* जो पुरुष पापसे रहित और समभावमें स्थित है, जिसका चित्त शत्रु, मित्र, उदासीनके प्रति समान है, उसके सब पापोंका नाश हो जाता है और वह भगवान् श्रीविष्णुके सायुज्यको प्राप्त होता है। समता धर्म और समता ही उत्कृष्ट तपस्या है। जिसके हृदयमें सदा समता विराजती है, वही पुरुष सम्पूर्ण लोकोंमें श्रेष्ठ, योगियोंमें गणना करनेके योग्य और निर्लोभ होता है, जो सदा इसी प्रकार समतापूर्ण बर्ताव करता है, वह अपनी अनेकों पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। उस पुरुषमें सत्य, इन्द्रिय-संयम, मनोनिग्रह, धीरता, स्थिरता, निर्लोभता और आलस्यहीनता—ये सभी गुण प्रतिष्ठित होते हैं। समताके प्रभावसे धर्मज्ञ पुरुष देवलोक और मनुष्यलोकके सम्पूर्ण वृत्तान्तोंको जान लेता है। उसकी देहके भीतर भगवान् श्रीविष्णु विराजमान रहते हैं। सत्य और सरलता आदि गुणोंमें उसकी समानता

---

* सत्येन समभावेन जितं तेन जगत्त्रयम्। तेनातृप्यन्त पितरो देवा मुनिगणैः सह॥
भूतभव्यप्रवृत्तं च तेन जानाति धार्मिकः। नास्ति सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम्॥
(पद्मपु०, सृष्टिख० ४७।९२-९३)

करनेवाला इस संसारमें दूसरा कोई नहीं होता। वह साक्षात् धर्मका स्वरूप होता है और वही इस जगत्को धारण करता है।

ब्राह्मणने कहा—विप्रवर! आपकी कृपासे मुझे तुलाधारके सर्वज्ञ होनेका कारण ज्ञात हो गया है, अब अद्रोहकका जो वृत्तान्त हो, वह मुझे बताइये।

श्रीभगवान्ने कहा—विप्रवर! पूर्वकालकी बात है, एक राजपुत्रकी कुलवती स्त्री बड़ी सुन्दरी और नयी अवस्थाकी थी। वह कामदेवकी पत्नी रति और इन्द्रकी पत्नी शचीके समान मनको हरनेवाली थी। राजकुमार उसे अपने प्राणोंके समान प्यार करते थे। उस सुन्दरी तरुणीका नाम भी सुन्दरी ही था। एक दिन राजकुमारको राजकार्यके लिये अकस्मात् बाहर जानेके लिये उद्यत होना पड़ा। उन्होंने मन-ही-मन सोचा—'मैं प्राणोंसे भी बढ़कर प्यारी अपनी इस भार्याको किस स्थानपर रखूँ, जिससे इसके सतीत्वकी रक्षा निश्चितरूपसे हो सके।' इस बातपर खूब विचार करके राजकुमार सहसा अद्रोहकके घरपर आये और उनसे अपनी पत्नीकी रक्षाका प्रस्ताव करने लगे। उनकी बात सुनकर अद्रोहकको बड़ा विस्मय हुआ। वे बोले—'तात! न तो मैं आपका पिता हूँ न भाई हूँ, न बान्धव हूँ, न आपकी पत्नीके पिता-माताके कुलका ही; तथा सुहृदोंमेंसे कोई भी नहीं हूँ, फिर मेरे घरमें इसको रखनेसे आप किस प्रकार निश्चिन्त हो सकेंगे?'

राजकुमार बोले—महात्मन्! इस संसारमें आपके समान धर्मज्ञ और जितेन्द्रिय पुरुष दूसरा कोई नहीं है।

यह सुनकर अद्रोहकने उस विज्ञ राजकुमारसे कहा—'भैया! मुझे दोष न देना। इस त्रिभुवन-मोहिनी तरुणीकी रक्षा करनेमें कौन पुरुष समर्थ हो सकता है।'

राजपुत्रने कहा—मैं सब बातोंका भलीभाँति विचार करके ही आपके पास आया हूँ। यह आपके घरमें रहे, अब मैं जाता हूँ।

राजकुमारके यों कहनेपर वे फिर बोले—'भैया! इस शोभासम्पन्न

नगरमें बहुतेरे कामी पुरुष भरे पड़े हैं। यहाँ किसी स्त्रीकी सतीत्वकी रक्षा कैसे हो सकती है।' राजकुमार पुनः बोले—'जैसे भी हो रक्षा कीजिये, मैं तो अब जाता हूँ।' गृहस्थ अद्रोहकने धर्म-संकटमें पड़कर कहा—'तात! मैं उचित और हितकारी समझकर इसके साथ सदा अनुचित बर्ताव करूँगा और उसी अवस्थामें ऐसी स्त्री सदा मेरे घरमें सुरक्षित रह सकती है। अन्यथा इस अरक्ष्य वस्तुकी रक्षाके लिये आप ही कोई अनुकूल और प्रिय उपाय बतलाइये। इसे मेरी शय्यापर मेरी एक ओर स्त्रीके साथ शयन करना होगा। फिर भी यदि आप इसे अपनी वल्लभा समझें, तब तो यह रह सकती है नहीं तो यहाँसे चली जाय।'

यह सुनकर राजकुमारने एक क्षणतक कुछ विचार किया; फिर बोले—'तात! मुझे आपकी बात स्वीकार है। आपको जो अनुकूल जान पड़े वही कीजिये।' ऐसा कहकर राजकुमार अपनी पत्नीसे बोले—'सुन्दरी! तुम इनके कथनानुसार सब कार्य करना, तुमपर कोई दोष नहीं आयेगा। इसके लिये मेरी आज्ञा है।' यों कहकर वे अपने पिता महाराजके आदेशसे गन्तव्य स्थानपर चले गये। तदनन्तर रातमें अद्रोहकने जैसा कहा था वैसा ही किया। वे धर्मात्मा नित्यप्रति दोनों स्त्रियोंके बीचमें शयन करते थे। फिर भी वे अपनी और परायी स्त्रीके विषयमें कभी धर्मसे विचलित नहीं होते थे। अपनी स्त्रीके स्पर्शसे ही उसे कामोपभोगकी इच्छा होती थी। इधर राजकुमारकी स्त्रीके स्तन भी बार-बार उनकी पीठमें लग जाते थे, किन्तु उसका उनके प्रति वैसे ही भाव होता था, जैसा बालक पुत्रका माताके स्तनोंके प्रति होता है। वे प्रतिदिन उसके प्रति मातृभावको ही दृढ़ रखते थे। क्रमशः उनके हृदयसे स्त्री-संभोगकी इच्छा ही जाती रही। इस प्रकार छः मास व्यतीत होनेपर राजकुमारीके पति अद्रोहकके नगरमें आये। उन्होंने लोगोंसे अद्रोहक तथा अपनी स्त्रीके बर्तावके सम्बन्धमें पूछा। लोगोंने भी अपनी-अपनी रुचिके अनुसार उत्तर दिया। कोई राजकुमारके प्रबन्धको

उत्तम बताते थे। कुछ नौजवान उनकी बात सुनकर आश्चर्यमें पड़ जाते थे और कुछ लोग इस प्रकार उत्तर देते थे—'भाई! तुमने अपनी स्त्री उसे सौंप दी है और वह उसीके साथ शयन करता है। स्त्री और पुरुषके संसर्ग होनेपर दोनोंके मन शान्त कैसे रह सकते हैं।' अद्रोहकने अपने धर्माचरणके बलसे लोगोंकी कुत्सित चर्चा सुन ली। तब उनके मनमें लोकनिन्दासे मुक्त होनेका शुभ संकल्प प्रकट हुआ। उन्होंने स्वयं लकड़ी एकत्रित करके एक बहुत बड़ी चिता बनायी और उसमें आग लगा दी। चिता प्रज्वलित हो उठी। इसी समय प्रतापी राजकुमार अद्रोहकके घर आ पहुँचे। वहाँ उन्होंने अद्रोहक तथा अपनी पत्नीको भी देखा, पत्नीका मुख प्रसन्नतासे खिला हुआ था और अद्रोहक अत्यन्त विषादयुक्त थे। उन दोनोंकी मानसिक स्थिति जानकर राजकुमारने कहा—'भाई! मैं आपका मित्र हूँ और बहुत दिनोंके बाद यहाँ लौटा हूँ। आप मुझसे बातचीत क्यों नहीं करते?'

अद्रोहकने कहा—मित्र! मैंने आपके हितके लिये जो दुष्कर्म किया है, वह लोकनिन्दाके कारण व्यर्थ-सा हो गया है। अतः मैं अग्निमें प्रवेश करूँगा। सम्पूर्ण देवता और मनुष्य मेरे इस कार्यको देखें।

श्रीभगवान् कहते हैं—ऐसा कहकर महाभाग अद्रोहक अग्निमें प्रवेश कर गये। किन्तु अग्नि उनके शरीर, वस्त्र और केशोंको जला नहीं सका। आकाशमें खड़े समस्त देवता प्रसन्न होकर उन्हें साधुवाद देने लगे। सबने चारों ओरसे उनके मस्तकपर फूलोंकी वर्षा की, जिन-जिन लोगोंने राजकुमारकी पत्नी और अद्रोहकके सम्बन्धमें कलंकपूर्ण बात कही थी, उनके मुँहपर नाना प्रकारकी कोढ़ हो गयी। देवताओंने वहाँ उपस्थित हो अद्रोहकको आगसे खींचकर बाहर निकाला और प्रसन्नतापूर्वक दिव्य पुष्पोंसे उनका पूजन किया। उनका चरित्र सुनकर मुनियोंको भी बड़ा विस्मय हुआ। समस्त मुनिवरों तथा विभिन्न वर्णोंके मनुष्योंने उन महातेजस्वी महात्माका पूजन किया और उन्होंने भी सबका विशेष आदर किया। उस समय देवताओं, असुरों और मनुष्योंने

मिलकर उनका नाम सज्जनाद्रोहक रखा। उनके चरणोंकी धूलिसे पवित्र हुई भूमिके ऊपर खेतीकी उपज अधिक होने लगी। देवताओंने राजकुमारसे कहा—'तुम अपनी इस स्त्रीको स्वीकार करो। इन अद्रोहकके समान कोई मनुष्य इस संसारमें नहीं हुआ है, इस समय इस पृथ्वीपर दूसरा कोई ऐसा पुरुष नहीं है, जिसे काम और लोभने परास्त न किया हो। देवता, असुर, मनुष्य, राक्षस, मृग, पक्षी और कीट आदि सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये यह काम दुर्जय है। काम, लोभ और क्रोधके कारण ही प्राणियोंको सदा जन्म लेना पड़ता है। काम ही संसार-बन्धनमें डालनेवाला है। प्राय: कहीं भी कामरहित पुरुषका मिलना कठिन है। इन अद्रोहकने सबको जीत लिया है; चौदहों भुवनोंपर विजय प्राप्त की है। इनके हृदयमें भगवान् श्रीवासुदेव बड़ी प्रसन्नताके साथ नित्य विराजमान रहते हैं। इनका स्पर्श और दर्शन करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं और निष्पाप होकर अक्षय स्वर्ग प्राप्त करते हैं।'

यों कहकर देवता विमानोंपर बैठ आनन्दपूर्वक स्वर्गलोकको पधारे। मनुष्य भी सन्तुष्ट होकर अपने-अपने स्थानको चल दिये तथा वे दोनों स्त्री-पुरुष भी अपने राजमहलको चले गये। तबसे अद्रोहकको दिव्य दृष्टि प्राप्त हो गयी है। वे देवताओंको भी देखते हैं और तीनों लोकोंकी बातें अनायास ही जान लेते हैं।

व्यासजी कहते हैं—तदनन्तर अद्रोहककी गलीमें जाकर द्विजने उनका दर्शन किया और बड़ी प्रसन्नताके साथ उनसे धर्ममय उपदेश तथा हितकी बातें पूछीं।

सज्जनाद्रोहकने कहा—धर्मज्ञ ब्राह्मण! आप पुरुषोंमें श्रेष्ठ वैष्णवके पास जाइये। उनका दर्शन करनेसे इस समय आपका मनोरथ सफल होगा। बगुलेकी मृत्यु तथा आकाशमें वस्त्र न सूखने आदिका कारण आपको विदित हो जायगा। इसके सिवा आपके हृदयमें और भी जो-जो कामनाएँ हैं, उनकी भी पूर्ति हो जायगी।

यह सुनकर वह ब्राह्मण द्विजरूपधारी भगवान्‌के साथ प्रसन्नता-पूर्वक वैष्णवके यहाँ आया। वहाँ पहुँचकर उसने सामने बैठे हुए शुद्ध हृदयवाले एक तेजस्वी पुरुषको देखा, जो समस्त शुद्ध लक्षणोंसे सम्पन्न एवं अपने तेजसे देदीप्यमान थे। धर्मात्मा द्विजने ध्यानमग्न हरिभक्तसे कहा—'महात्मन्! मैं बहुत दूरसे आपके पास आया हूँ। मेरे लिये जो-जो कर्तव्य उचित हो, उसका उपदेश कीजिये।'

वैष्णवने कहा—देवताओंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीविष्णु तुमपर प्रसन्न हैं। इस समय तुम्हें देखकर मेरा हृदय उल्लसित-सा हो रहा है। अतः तुम्हें अनुपम कल्याणकी प्राप्ति होगी। आज तुम्हारा मनोरथ सफल होगा। मेरे घरमें भगवान् श्रीविष्णु विराजमान हैं।

वैष्णवके यों कहनेपर ब्राह्मणने पुनः उनसे कहा—'भगवान् श्रीविष्णु कहाँ हैं, आज कृपा करके मुझे उनका दर्शन कराइये।'

वैष्णवने कहा—इस सुन्दर देवालयमें प्रवेश करके तुम परमेश्वरका दर्शन करो। ऐसा करनेसे तुम्हें जन्म और मृत्युके बन्धनमें डालनेवाले घोर पापसे छुटकारा मिल जायगा।

उनकी बात सुनकर जब ब्राह्मणने देवमन्दिरमें प्रवेश किया तो देखा—वे ही विप्ररूपधारी भगवान् कमलके आसनपर विराजमान हैं, ब्राह्मणने मस्तक झुकाकर उन्हें प्रणाम किया और बड़ी प्रसन्नताके साथ उनके दोनों चरण पकड़कर कहा—'देवेश्वर! अब मुझपर प्रसन्न होइये। मैंने पहले आपको नहीं पहचाना था। प्रभो! इस लोक और परलोकमें भी मैं आपका किंकर बना रहूँ। मधुसूदन! मुझे अपने ऊपर आपका प्रत्यक्ष अनुग्रह दिखायी दिया है। यदि मुझपर कृपा हो तो मैं आपका साक्षात् स्वरूप देखना चाहता हूँ।'

भगवान् श्रीविष्णु बोले—भूदेव! तुम्हारे ऊपर मेरा प्रेम सदा ही बना रहता है। मैंने स्नेहवश ही तुम्हें पुण्यात्मा महापुरुषोंका दर्शन कराया है। पुण्यवान् महात्माओंके एक बार भी दर्शन, स्पर्श, ध्यान एवं नामोच्चारण करनेसे तथा उनके साथ वार्तालाप करनेसे मनुष्य

अक्षय स्वर्गका सुख भोगता है। महापुरुषोंका नित्य संग करनेसे सब पापोंका नाश हो जाता है तथा मनुष्य अनन्त सुख भोगकर मेरे स्वरूपमें लीन होता है।* जो मनुष्य पुण्य तीर्थोंमें स्नान करके शंकरजी तथा पुण्यात्मा पुरुषोंके आश्रमका दर्शन करता है, वह भी मेरे शरीरमें लीन हो जाता है। एकादशी तिथिको—जो मेरा ही दिन (हरिवासर) है—उपवास करके जो लोगोंके सामने पुण्यमयी कथा कहता है, वह भी मेरे स्वरूपमें लीन हो जाता है। मेरे चरित्रका श्रवण करते हुए जो रात्रिमें जागता है, उसका भी मेरे शरीरमें लय होता है। विप्रवर! जो प्रतिदिन ऊँचे स्वरसे गीत गाते और बाजा बजाते हुए मेरे नामोंको स्मरण करता है, उसका भी मेरी देहमें लय होता है। जिसका मन तपस्वी, राजा और गुरुजनोंसे कभी द्रोह नहीं करता, वह भी मेरे स्वरूपमें लीन होता है। तुम मेरे भक्त और तीर्थस्वरूप हो; किन्तु तुमने जो बगुलेकी मृत्युके लिये शाप दिया था, उसके दोषसे छुटकारा दिलानेके लिये मैंने ही वहाँ उपस्थित होकर कहा कि 'तुम पुण्यवानोंमें श्रेष्ठ और तीर्थस्वरूप महात्मा मूक चाण्डालके पास जाओ।' तात! उस महात्माका दर्शन करके तुमने देखा ही था कि वह किस प्रकार अपने माता-पिताका पूजन करता था। उन सभी महात्माओंके दर्शनसे, उनके साथ वार्तालाप करनेसे और मेरा सम्पर्क होनेसे आज तुम मेरे मन्दिरमें आये हो। करोड़ों जन्मोंके बाद जिसके पापोंका क्षय होता है, वह धर्मज्ञ पुरुष मेरा दर्शन करता है; जिससे उसे प्रसन्नता प्राप्त होती है। वत्स! मेरे ही अनुग्रहसे तुमको मेरा दर्शन हुआ है। इसलिये तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो, उसके अनुसार मुझसे वर माँग लो।

ब्राह्मण बोला—नाथ! मेरा मन सर्वथा आपके ही ध्यानमें स्थित

---

* दर्शनात्स्पर्शनाद्ध्यानात्कीर्तनाद्भाषणात्तथा। सकृत्पुण्यवतामेव स्वर्गं चाक्षयमश्नुते॥
नित्यमेव तु संसर्गात् सर्वपापक्षयो भवेत्। भुक्त्वा सुखमनन्तं च मद्देहे प्रविलीयते॥
(पद्मपु०, सृष्टिख० ४७।१६२-६३)

रहे, सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी माधव! आपके सिवा कोई भी दूसरी वस्तु मुझे कभी प्रिय न लगे।

श्रीभगवान्‌ने कहा—निष्पाप ब्राह्मण! तुम्हारी बुद्धिमें सदा ऐसा ही उत्तम विचार जाग्रत् रहता है; इसलिये तुम मेरे धाममें आकर मेरे ही समान दिव्य भोगोंका उपभोग करोगे, किन्तु तुम्हारे माता-पिता तुमसे आदर नहीं पा रहे हैं; अतः पहले माता-पिताकी पूजा करो, इसके बाद मेरे स्वरूपको प्राप्त हो सकोगे। उनके दुःखपूर्ण उच्छ्वास और क्रोधसे तुम्हारी तपस्या प्रतिदिन नष्ट हो रही है। जिस पुत्रके ऊपर सदा ही माता-पिताका कोप रहता है, उसको नरकमें पड़नेसे मैं, ब्रह्मा और महादेवजी भी नहीं रोक सकते।* इसलिये तुम माता-पिताके पास जाओ और यत्नपूर्वक उनकी पूजा करो। फिर उन्हींकी कृपासे तुम मेरे पदको प्राप्त होगे।

व्यासजी कहते हैं—जगद्‌गुरु भगवान्‌के ऐसा कहनेपर द्विजश्रेष्ठ नरोत्तमने फिर इस प्रकार कहा—'नाथ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे अपने स्वरूपका दर्शन कराइये।' तब सम्पूर्ण लोकोंके एकमात्र कर्ता एवं ब्राह्मण-हितैषी भगवान्‌ने नरोत्तमके प्रेमसे प्रसन्न होकर उस पुण्यकर्मा ब्राह्मणको शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये अपने पुरुषोत्तमरूपका दर्शन कराया। उनके तेजसे सम्पूर्ण जगत् व्याप्त हो रहा था। ब्राह्मणने दण्डकी भाँति धरतीपर गिरकर भगवान्‌को प्रणाम किया और कहा—'जगदीश्वर! आज मेरा जन्म सफल हुआ; आज मेरे नेत्र कल्याणमय हो गये। इस समय मेरे दोनों हाथ प्रशस्त हो गये, आज मैं भी धन्य हो गया। मेरे पूर्वज सनातन ब्रह्मलोकको जा रहे हैं। जनार्दन! आज आपकी कृपासे मेरे बन्धु-बान्धव आनन्दित हो रहे हैं, इस समय मेरे सभी मनोरथ सिद्ध हो गये; किन्तु नाथ! मूक चाण्डाल आदि ज्ञानी महात्माओंकी बात सोचकर मुझे बड़ा विस्मय हो रहा है।

* मन्युर्निपतिते यस्मिन् पुत्रे पित्रोश्च नित्यशः। तन्निरयं न बाधेऽहं न धाता न च शंकरः॥
(पद्मपु०, सृष्टिख० ४७। १७८)

भला, वे लोग देशान्तरमें होनेवाले मेरे वृत्तान्तको कैसे जानते हैं? मूक चाण्डालके घरमें आप अत्यन्त सुन्दर ब्राह्मणका रूप धारण किये विराजमान थे; इसी प्रकार पतिव्रताके घरमें, तुलाधारके यहाँ, मित्राद्रोहकके भवनमें तथा इन वैष्णव महात्माके मन्दिरमें भी आपका दर्शन हुआ है। इन सब बातोंका यथार्थ रहस्य क्या है? मुझपर अनुग्रह करके बताइये।'

श्रीभगवान्‌ने कहा—विप्रवर! मूक चाण्डाल सदा अपने माता-पितामें भक्ति रखता है। शुभा देवी पतिव्रता है। तुलाधार सत्यवादी है और सब लोगोंके प्रति समान भाव रखता है। अद्रोहकने लोभ और कामपर विजय पायी है तथा वैष्णव मेरा अनन्य भक्त है। इन्हीं सद्गुणोंके कारण प्रसन्न होकर मैं इन सबके घरमें सानन्द निवास करता हूँ। मेरे साथ सरस्वती और लक्ष्मी भी इन लोगोंके यहाँ मौजूद रहती हैं। मूक चाण्डाल त्रिभुवनमें सबका कल्याण करनेवाला है। चाण्डाल होनेपर भी वह सदाचारमें स्थित है; इसलिये देवता उसे ब्राह्मण मानते हैं। पुण्यकर्मद्वारा मूक चाण्डालकी समानता करनेवाला इस संसारमें दूसरा कोई नहीं है। वह सदा माता-पिताकी भक्तिमें संलग्न रहता है। उसने (अपनी इस भक्तिके बलसे) तीनों लोकोंको जीत लिया है। उसकी माता-पिताके प्रति भक्ति देखकर मैं बहुत संतुष्ट रहता हूँ और इसीलिये उसके घरके भीतर आकाशमें सम्पूर्ण देवताओंके साथ ब्राह्मणरूपसे निवास करता हूँ। इसी प्रकार मैं उस पतिव्रताके, तुलाधारके, अद्रोहकके और इस वैष्णवके घरमें भी सदा निवास करता हूँ। धर्मज्ञ! एक मुहूर्तके लिये भी मैं इन लोगोंका घर नहीं छोड़ता। जो पुण्यात्मा हैं, वे ही मेरा प्रतिदिन दर्शन पाते हैं; दूसरे पापी मनुष्य नहीं। तुमने अपने पुण्यके प्रभावसे और मेरे अनुग्रहके कारण मेरा दर्शन किया है; अब मैं क्रमशः उन महात्माओंके सदाचारका वर्णन करूँगा, तुम ध्यान देकर सुनो। ऐसे वर्णनोंको सुनकर मनुष्य जन्म-मृत्युके बन्धनसे सर्वथा मुक्त हो जाता है। देवताओंमें भी, माता-पितासे बढ़कर तीर्थ नहीं है, जिसने माता-पिताकी आराधना की है, वही पुरुषोंमें श्रेष्ठ

है। वह मेरे हृदयमें रहता है और मैं उसके हृदयमें। हम दोनोंमें कोई अन्तर नहीं रह जाता। इहलोक और परलोकमें भी वह मेरे ही समान पूज्य है। वह अपने समस्त बन्धु-बान्धवोंके साथ मेरे रमणीय धाममें पहुँचकर मुझमें ही लीन हो जाता है। माता-पिताकी आराधनाके बलसे ही वह नरश्रेष्ठ मूक चाण्डाल तीनों लोकोंकी बातें जानता है, फिर इस विषयमें तुम्हें विस्मय क्यों हो रहा है?

ब्राह्मणने पूछा—जगदीश्वर! मोह और अज्ञानवश पहले माता-पिताकी आराधना न करके फिर भले-बुरेका ज्ञान होनेपर यदि मनुष्य पुनः माता-पिताकी सेवा करना चाहे तो उसके लिये क्या कर्तव्य है?

श्रीभगवान् बोले—विप्रवर! एक वर्ष, एक मास, एक पक्ष, एक सप्ताह अथवा एक दिन भी जिसने माता-पिताकी भक्ति की है, वह मेरे धामको प्राप्त होता है।* तथा जो उनके मनको कष्ट पहुँचाता है, वह अवश्य नरकमें पड़ता है। जिसने पहले अपने माता-पिताकी पूजा की हो या न की हो, यदि उनकी मृत्युके पश्चात् वह साँड़ छोड़ता है, तो उसे पितृभक्तिका फल मिल जाता है। जो बुद्धिमान् पुत्र अपना सर्वस्व लगाकर माता-पिताका श्राद्ध करता है, वह जातिस्मर (पूर्व-जन्मोंकी बातोंको स्मरण करनेवाला) होता है और उसे पितृभक्तिका पूरा फल मिल जाता है। श्राद्धसे बढ़कर महान् यज्ञ तीनों लोकोंमें दूसरा कोई नहीं है। इसमें जो कुछ दान दिया जाता है, वह अक्षय होता है। दूसरोंको जो दान दिया जाता है; उसका फल दस हजार गुना होता है। अपनी जातिवालोंको देनेसे लाख गुना, पिण्डदानमें लगाया हुआ धन करोड़ गुना और ब्राह्मणको देनेपर वह अनन्त गुना फल देनेवाला बताया गया है। जो गंगाजीके जलमें और गया, प्रयाग, पुष्कर, काशी, सिद्धकुण्ड तथा गंगा-सागर-संगम तीर्थमें पितरोंके लिये अन्नदान करता है, उसकी मुक्ति निश्चित है तथा उसके पितर अक्षय स्वर्ग प्राप्त

* दिनैकं मासपक्षं वा पक्षार्द्धं वापि वत्सरम्। पित्रोर्भक्तिः कृता येन स च गच्छेन्ममालयम्॥
(पद्मपु०, सृष्टिख० ४७। २०८)

करते हैं। उसका जन्म सफल हो जाता है। जो विशेषत: गंगाजीमें तिलमिश्रित जलके द्वारा तर्पण करता है, उसे भी मोक्षका मार्ग मिल जाता है, फिर जो पिण्डदान करता है, उसके लिये तो कहना ही क्या है। अमावास्या और युगादि तिथियोंको तथा चन्द्रमा और सूर्यग्रहणके दिन जो पार्वण श्राद्ध करता है, वह अक्षय लोकका भागी होता है। उसके पितर उसे प्रिय आशीर्वाद और अनन्त भोग प्रदान करके दस हजार वर्षोंतक तृप्त रहते हैं। इसलिये प्रत्येक पर्वपर पुत्रोंको प्रसन्नतापूर्वक पार्वण श्राद्ध करना चाहिये। माता-पिताके इस श्राद्ध-यज्ञका अनुष्ठान करके मनुष्य सब प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है।

जो श्राद्ध प्रतिदिन किया जाता है, उसे नित्य श्राद्ध माना गया है। जो पुरुष श्रद्धापूर्वक नित्य श्राद्ध करता है, वह अक्षय लोकका उपभोग करता है। इसी प्रकार कृष्णपक्षमें विधिपूर्वक काम्य श्राद्धका अनुष्ठान करके मनुष्य मनोवांछित फल प्राप्त करता है। आषाढ़की पूर्णिमाके बाद जो पाँचवाँ पक्ष आता है, [जिसे महालय या पितृपक्ष कहते हैं] उसमें पितरोंका श्राद्ध करना चाहिये। उस समय सूर्य कन्याराशिपर गये हैं या नहीं—इसका विचार नहीं करना चाहिये। जब सूर्य कन्याराशिपर स्थित होते हैं, उस समयसे लेकर सोलह दिन उत्तम दक्षिणाओंसे सम्पन्न यज्ञोंके समान महत्त्व रखते हैं। उन दिनोंमें इस परम पवित्र काम्य श्राद्धका अनुष्ठान करना उचित है। इससे श्राद्धकर्ताका मंगल होता है। यदि उस समय श्राद्ध न हो सके तो जब सूर्य तुलाराशिपर स्थित हों, उसी समय कृष्णपक्ष आदिमें उक्त श्राद्ध करना उचित है।

चन्द्रग्रहणके समय सभी दान भूमिदानके समान होते हैं, सभी ब्राह्मण व्यासके समान माने जाते हैं और समस्त जल गंगाजलके तुल्य हो जाता है। चन्द्रग्रहणमें दिया हुआ दान और समयकी अपेक्षा लाख गुना तथा सूर्यग्रहणका दस लाख गुना अधिक फल देनेवाला बताया गया है और यदि गंगाजीका जल प्राप्त हो जाय तब तो चन्द्रग्रहणका दान करोड़ गुना और सूर्यग्रहणमें दिया हुआ दान दस करोड़ गुना

अधिक फल देनेवाला होता है। विधिपूर्वक एक लाख गोदान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह चन्द्रग्रहणके समय गंगाजीमें स्नान करनेसे मिल जाता है। जो चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणमें गंगाजीमें डुबकी लगाता है, उसे सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करनेका फल प्राप्त होता है। यदि रविवारको सूर्यग्रहण और सोमवारको चन्द्रग्रहण हो तो वह चूड़ामणि नामक योग कहलाता है; उसमें स्नान और दानका अनन्त फल माना गया है। उस समय पुण्य तीर्थमें पहले उपवास करके जो पुरुष पिण्डदान, तर्पण तथा धनदान करता है, वह सत्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

ब्राह्मणने पूछा—देव! आपने पिताके लिये किये जानेवाले श्राद्ध नामक महायज्ञका वर्णन किया। अब यह बताइये कि पुत्रको पिताके जीते-जी क्या करना चाहिये; कौन-सा कर्म करके बुद्धिमान् पुत्रको जन्म-जन्मान्तरोंमें परम कल्याणकी प्राप्ति हो सकती है। ये सब बातें यत्नपूर्वक बतानेकी कृपा कीजिये।

श्रीभगवान् बोले—विप्रवर! पिताको देवताके समान समझकर उनकी पूजा करनी चाहिये और पुत्रकी भाँति उनपर स्नेह रखना चाहिये। कभी मनसे भी उनकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं करना चाहिये। जो पुत्र रोगी पिताकी भलीभाँति परिचर्या करता है, उसे अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होती है और वह सदा देवताओंद्वारा पूजित होता है। पिता जब मरणासन्न होकर मृत्युके लक्षण देख रहे हों, उस समय भी उनका पूजन करके पुत्र देवताओंके समान हो जाता है। [पिताकी सद्गतिके निमित्त] विधिपूर्वक उपवास करनेसे जो लाभ होता है, अब उसका वर्णन करता हूँ। सुनो, हजार अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञ करनेसे जो पुण्य होता है, वही पुण्य [पिताके निमित्त] उपवास करनेसे प्राप्त होता है। वही उपवास यदि तीर्थमें किया जाय तो उन दोनों यज्ञोंसे करोड़ गुना अधिक फल मिलता है। जिस श्रेष्ठ पुरुषके प्राण गंगाजीके जलमें छूटते हैं, वह पुनः माताके दूधका पान नहीं करता, वरं मुक्त हो जाता है। जो अपने

इच्छानुसार काशीमें रहकर प्राण-त्याग करता है, वह मनोवांछित फल भोगकर मेरे स्वरूपमें लीन हो जाता है।* योगयुक्त नैष्ठिक ब्रह्मचारी मुनियोंको जिस गतिकी प्राप्ति होती है, वही गति ब्रह्मपुत्र नदीकी सात धाराओंमें प्राणत्याग करनेवालेको मिलती है। विशेषतः (अन्तकालमें) जो सोन नदीके उत्तर तटका आश्रय लेकर विधिपूर्वक प्राण-त्याग करता है, वह मेरी समानताको प्राप्त होता है। जिस मनुष्यकी मृत्यु घरके भीतर होती है, उस घरके छप्परमें जितनी गाँठें बँधी रहती हैं, उतने ही बन्धन उसके शरीरमें भी बँध जाते हैं। एक-एक वर्षके बाद उसका एक-एक बन्धन खुलता है। पुत्र और भाई-बन्धु देखते रह जाते हैं, किसीके द्वारा उसे उस बन्धनसे छुटकारा नहीं मिलता। पर्वत, जंगल, दुर्गमभूमि या जलरहित स्थानमें प्राण-त्याग करनेवाला मनुष्य दुर्गतिको प्राप्त होता है। उसे कीड़े आदिकी योनिमें जन्म लेना पड़ता है। जिस मरे हुए व्यक्तिके शवका दाह-संस्कार मृत्युके दूसरे दिन होता है, वह साठ हजार वर्षोंतक कुम्भीपाक नरकमें पड़ा रहता है। जो मनुष्य अस्पृश्यका स्पर्श करके या पतितावस्थामें प्राण त्याग करता है, वह चिरकालतक नरकमें निवास करके म्लेच्छ-योनिमें जन्म लेता है। पुण्यसे अथवा पुण्यकर्मोंका अनुष्ठान करनेसे मर्त्यलोकनिवासी सब मनुष्योंकी मृत्युके समय जैसी बुद्धि होती है, वैसी ही गति उन्हें प्राप्त होती है।

पिताके मरनेपर जो बलवान् पुत्र उनके शरीरको कन्धेपर ढोता है, उसे पग-पगपर अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है। पुत्रको चाहिये कि वह पिताके शवको चितापर रखकर विधिपूर्वक मन्त्रोच्चारण करते हुए पहले उसके मुखमें आग दे, उसके बाद सम्पूर्ण शरीरका दाह करे। [उस समय इस प्रकार कहे—] 'जो लोभ-मोहसे युक्त तथा पाप-पुण्यसे आच्छादित थे, उन पिताजीके इस शवका, इसके सम्पूर्ण

---

* वाराणस्यां त्यजेद्यस्तु प्राणांश्चैव यदृच्छया। अभीष्टं च फलं भुक्त्वा मद्देहे प्रविलीयते॥
(पद्मपु०, सृष्टिख० ४७।२५२)

अंगोंका मैं दाह करता हूँ; वे दिव्यलोकमें जायँ।* इस प्रकार दाह करके पुत्र अस्थि-संचयके लिये कुछ दिन प्रतीक्षामें व्यतीत करे फिर यथासमय अस्थि-संचय करके दशाह (दसवाँ दिन) आनेपर स्नानकर गीले वस्त्रका परित्याग कर दे, फिर विद्वान् पुरुष ग्यारहवें दिन एकादशाह-श्राद्ध करे और प्रेतके शरीरकी पुष्टिके लिये एक ब्राह्मणको भोजन कराये। उस समय वस्त्र, पीढ़ा और चरणपादुका आदि वस्तुओंका विधिपूर्वक दान करे। दशाहके चौथे दिन किया जानेवाला (चतुर्थाह) तीन पक्षके बाद किया जानेवाला (त्रैपाक्षिक अथवा सार्धमासिक), छः मासके भीतर होनेवाला (ऊनषाण्मासिक) तथा वर्षके भीतर किया जानेवाला (ऊनाब्दिक) श्राद्ध और इनके अतिरिक्त बारह महीनोंके बारह श्राद्ध—कुल सोलह श्राद्ध माने गये हैं। जिसके लिये ये सोलह श्राद्ध यथाशक्ति श्रद्धापूर्वक नहीं किये जाते, उसका पिशाचत्व स्थिर हो जाता है। अन्यान्य सैकड़ों श्राद्ध करनेपर भी प्रेतयोनिसे उसका उद्धार नहीं होता। एक वर्ष व्यतीत होनेपर विद्वान् पुरुष पार्वण श्राद्धकी विधिसे सपिण्डीकरण नामक श्राद्ध करे।

ब्राह्मणने पूछा—केशव! तपस्वी, वनवासी और गृहस्थ ब्राह्मण यदि धनसे हीन हो तो उसका पितृ-कार्य कैसे हो सकता है?

श्रीभगवान् बोले—जो तृण और काष्ठका उपार्जन करके अथवा कौड़ी-कौड़ी माँगकर पितृकार्य करता है, उसके कर्मका लाख गुना अधिक फल होता है। कुछ भी न हो तो पिताकी तिथि आनेपर जो मनुष्य केवल गौओंको घास खिला देता है, उसे पिण्डदानसे भी अधिक फल प्राप्त होता है। पूर्वकालकी बात है, विराटदेशमें एक अत्यन्त दीन मनुष्य रहता था। एक दिन पिताकी तिथि आनेपर वह बहुत रोया; रोनेका कारण यह था कि उसके पास (श्राद्धोपयोगी) सभी वस्तुओंका अभाव था। बहुत देरतक रोनेके पश्चात् उसने किसी विद्वान् ब्राह्मणसे

---

* लोभमोहसमायुक्तं पापपुण्यसमावृतम्। दहेयं सर्वगात्राणि दिव्याँल्लोकान् स गच्छतु॥
(पद्मपु०, सृष्टिख० ४७। २६६)

पूछा—'ब्रह्मन्! आज मेरे पिताकी तिथि है, किन्तु मेरे पास धनके नामपर कौड़ी भी नहीं है, ऐसी दशामें क्या करनेसे मेरा हित होगा? आप मुझे ऐसा उपदेश दीजिये, जिससे मैं धर्ममें स्थित रह सकूँ।'

विद्वान् ब्राह्मणने कहा—तात! इस समय 'कुतप' नामक मुहूर्त बीत रहा है, तुम शीघ्र ही वनमें जाओ और पितरोंके उद्देश्यसे घास लाकर गौको खिला दो।

तदनन्तर, ब्राह्मणके उपदेशसे वह वनमें गया और घासका बोझा लेकर बड़े हर्षके साथ पिताकी तृप्तिके लिये उसे गौको खिला दिया। इस पुण्यके प्रभावसे वह देवलोकको चला गया। पितृयज्ञसे बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है; इसलिये पूर्ण प्रयत्न करके अपनी शक्तिके अनुसार मात्सर्यभावका त्याग करके श्राद्ध करना चाहिये। जो मनुष्य लोगोंके सामने इस धर्मसन्तान (धर्मका विस्तार करनेवाले) अध्यायका पाठ करता है, उसे प्रत्येक लोकमें गंगाजीके जलमें स्नान करनेका फल प्राप्त होता है। जिसने प्रत्येक जन्ममें महापातकोंका संग्रह किया हो, उसका वह सारा संग्रह इस अध्यायका एक बार पाठ करने या श्रवण करनेपर नष्ट हो जाता है।

पतिव्रता ब्राह्मणीका उपाख्यान, कुलटा स्त्रियोंके सम्बन्धमें उमा-नारद-संवाद, पतिव्रताकी महिमा और कन्यादानका फल—

नरोत्तमने पूछा—नाथ! पतिव्रता स्त्री मेरे बीते हुए वृत्तान्तको कैसे जानती है? उसका प्रभाव कैसा है? यह सब बतानेकी कृपा करें।

श्रीभगवान् बोले—वत्स! मैं यह बात तुम्हें पहले बता चुका हूँ। किन्तु फिर यदि सुननेका कौतूहल हो रहा है तो सुनो; तुम्हारे मनमें जो कुछ प्रश्न है, सबका उत्तर दे रहा हूँ। जो स्त्री पतिव्रता होती है, पतिको प्राणोंके समान समझती है और सदा पतिके हित-साधनमें संलग्न रहती है, वह देवताओं और ब्रह्मवादी मुनियोंकी भी पूज्य होती है। जो नारी एक ही पुरुषकी सेवा स्वीकार करती है—दूसरेकी ओर दृष्टि भी नहीं डालती, वह संसारमें परम पूजनीय मानी जाती है।

तात! प्राचीनकालकी बात है, मध्य देशमें एक अत्यन्त शोभायमान नगरी थी। उसमें एक पतिव्रता ब्राह्मणी रहती थी, उसका नाम था शैब्या। उसका पति पूर्वजन्मके पापसे कोढ़ी हो गया था। उसके शरीरमें अनेकों घाव हो गये थे, जो बराबर बहते रहते थे। शैब्या अपने ऐसे पतिकी सेवामें सदा संलग्न रहती थी। पतिके मनमें जो-जो इच्छा होती थी, उसे वह अपनी शक्तिके अनुसार अवश्य पूर्ण करती थी। प्रतिदिन देवताकी भाँति स्वामीकी पूजा करती और दोषबुद्धि त्यागकर उसके प्रति विशेष स्नेह रखती थी। एक दिन उसके पतिने सड़कसे जाती हुई एक परम सुन्दरी वेश्याको देखा, उसपर दृष्टि पड़ते ही वह अत्यन्त मोहके वशीभूत हो गया। उसकी चेतनापर कामदेवने पूरा अधिकार कर लिया। वह दीर्घकालतक लम्बी साँस खींचता रहा और अन्तमें बहुत उदास हो गया। उसका उच्छ्वास सुनकर पतिव्रता घरसे बाहर आयी और अपने पतिसे

पूछने लगी—'नाथ! आप उदास क्यों हो गये? आपने लम्बी साँस कैसे खींची? प्रभो! आपको जो प्रिय हो वह कार्य मुझे बताइये। वह करनेयोग्य हो या न हो, मैं आपके प्रिय कार्यको अवश्य पूर्ण करूँगी। एकमात्र आप ही मेरे गुरु हैं, प्रियतम हैं।'

पत्नीके इस प्रकार पूछनेपर उसके पतिने कहा—'प्रिये! उस कार्यको न तुम्हीं पूर्ण कर सकती हो और न मैं ही; अतः व्यर्थ बात करनी उचित नहीं है।'

पतिव्रता बोली—नाथ! (मुझे विश्वास है) मैं आपका मनोरथ जानकर उस कार्यको सिद्ध कर सकूँगी, आप मुझे आज्ञा दीजिये। जिस-किसी उपायसे हो सके मुझे आपका कार्य सिद्ध करना है। यदि आपके दुष्कर कार्यको मैं यत्न करके पूर्ण कर सकूँ तो इस लोक और परलोकमें भी मेरा परम कल्याण होगा।

कोढ़ीने कहा—साध्वि! अभी-अभी इस मार्गसे एक परम सुन्दरी वेश्या जा रही थी। उसका शरीर सब ओरसे मनोरम था। उसे देखकर मेरा हृदय कामाग्निसे दग्ध हो रहा है। यदि तुम्हारी कृपासे मैं उस नवयौवनाको प्राप्त कर सकूँ तो मेरा जन्म सफल हो जायगा। देवि! तुम उसे मिलाकर मेरा हितसाधन करो।

पतिकी कही हुई बात सुनकर पतिव्रता बोली—'प्रभो! इस समय धैर्य रखिये। मैं यथाशक्ति आपका कार्य सिद्ध करूँगी।'

यह कहकर पतिव्रताने मन-ही-मन कुछ विचार किया और रात्रिके अन्तिम भाग—उषःकालमें उठकर वह गोबर और झाड़ू ले तुरन्त ही चल दी। जाते समय उसके मनमें बड़ी प्रसन्नता थी। वेश्याके घर पहुँचकर उसने उसके आँगन और गलीमें झाड़ू लगायी तथा गोबरसे लीप-पोतकर लोगोंकी दृष्टि पड़नेके भयसे वह शीघ्रतापूर्वक अपने घर लौट आयी। इस प्रकार लगातार तीन दिनोंतक पतिव्रताने वेश्याके घरमें झाड़ू देने और लीपनेका काम किया। उधर वह वेश्या अपने दास-दासियोंसे पूछने लगी—आज आँगनकी इतनी बढ़िया सफाई किसने की

है? सेवकोंने परस्पर विचार करके वेश्यासे कहा—'भद्रे! घरकी सफाईका यह काम हमलोगोंने तो नहीं किया है।' यह सुनकर वेश्याको बड़ा विस्मय हुआ, उसने बहुत देरतक इसके विषयमें विचार किया और रात्रि बीतनेपर ज्यों ही वह उठी तो उसकी दृष्टि उस पतिव्रता ब्राह्मणीपर पड़ी। वह पुनः टहल बजानेके लिये आयी थी। उस परम साध्वी पतिव्रता ब्राह्मणीको देखकर 'हाय! हाय!' आप यह क्या करती हैं, क्षमा कीजिये, रहने दीजिये।' यह कहती हुई वेश्याने उसके पैर पकड़ लिये और पुनः कहा—'पतिव्रते! आप मेरी आयु, शरीर, सम्पत्ति, यश तथा कीर्ति—इन सबका विनाश करनेके लिये ऐसी चेष्टा कर रही हैं। साध्वि! आप जो-जो वस्तु माँगें, उसे निश्चय दूँगी—यह बात मैं दृढ़ निश्चयके साथ कह रही हूँ। सुवर्ण, रत्न, मणि, वस्त्र और भी जिस-किसी वस्तुकी आपके मनमें अभिलाषा हो, उसे माँगिये।'

तब पतिव्रताने उस वेश्यासे कहा—'मुझे धनकी आवश्यकता नहीं है, तुम्हींसे कुछ काम है; यदि करो तो उसे बताऊँ। उस कार्यकी सिद्धि होनेपर ही मेरे हृदयमें सन्तोष होगा और तभी मैं यह समझूँगी कि तुमने इस समय मेरा सारा मनोरथ पूर्ण कर दिया।'

वेश्या बोली—पतिव्रते! आप जल्दी बताइये। मैं सच-सच कहती हूँ, आपका अभीष्ट कार्य अवश्य करूँगी। माताजी! आप तुरन्त ही अपनी आवश्यकता बतायें और मेरी रक्षा करें।

पतिव्रताने लजाते-लजाते वह कार्य, जो उसके पतिको श्रेष्ठ एवं प्रिय जान पड़ता था, कह सुनाया। उसे सुनकर वेश्या एक क्षणतक अपने कर्तव्य और उसके पतिकी पीड़ापर कुछ विचार करती रही। दुर्गन्धयुक्त कोढ़ी मनुष्यके साथ संसर्ग करनेकी बात सोचकर उसके मनमें बड़ा दुःख हुआ। वह पतिव्रतासे इस प्रकार बोली—'देवि! यदि आपके पति मेरे घरपर आयें तो मैं एक दिन उनकी इच्छा पूर्ण करूँगी।'

पतिव्रताने कहा—सुन्दरी! मैं आज ही रातमें अपने पतिको लेकर

तुम्हारे घरमें आऊँगी और जब वे अपनी अभीष्ट वस्तुका उपभोग करके सन्तुष्ट हो जायँगे, तब पुनः उनको अपने घर ले जाऊँगी।

वेश्या बोली—महाभागे! अब शीघ्र ही अपने घरको पधारो, तुम्हारे पति आज आधी रातके समय मेरे महलमें आयें।

यह सुनकर वह पतिव्रता अपने घर चली आयी। वहाँ पहुँचकर उसने पतिसे निवेदन किया—'प्रभो! आपका कार्य सफल हो गया। आज ही रातमें आपको उसके घर जाना है।'

कोढ़ी ब्राह्मण बोला—देवि! मैं कैसे उसके घर जाऊँगा, मुझसे तो चला नहीं जाता। फिर कैसे वह कार्य सिद्ध होगा?

पतिव्रता बोली—प्राणनाथ! मैं आपको अपनी पीठपर बैठाकर उसके घर पहुँचाऊँगी और आपका मनोरथ सिद्ध हो जानेपर फिर उसी मार्गसे लौटा ले आऊँगी।

ब्राह्मणने कहा—कल्याणी! तुम्हारे करनेसे ही मेरा कार्य सिद्ध होगा। इस समय तुमने जो काम किया है, वह दूसरी स्त्रियोंके लिये दुष्कर है।

श्रीभगवान् कहते हैं—उस नगरमें किसी धनीके घरसे चोरोंने बहुत-सा धन चुरा लिया। यह बात जब राजाके कानोंमें पड़ी, तब उन्होंने रातमें घूमनेवाले समस्त गुप्तचरोंको बुलाया और कुपित होकर कहा—'यदि तुम्हें जीवित रहनेकी इच्छा है तो आज चोरको पकड़कर मेरे हवाले करो।' राजाकी यह आज्ञा पाकर सभी गुप्तचर व्याकुल हो उठे और चोरको पकड़नेकी इच्छासे चल दिये। उस नगरके पास ही एक घना जंगल था, जहाँ एक वृक्षके नीचे महातेजस्वी मुनिवर माण्डव्य समाधि लगाये बैठे थे। वे योगियोंमें प्रधान महर्षि अग्निके समान देदीप्यमान हो रहे थे। ब्रह्माजीके समान तेजस्वी उन महामुनिको देखकर दुष्ट गुप्तचरोंने आपसमें कहा—'यही चोर है। यह धूर्त अद्भुत रूप बनाये इस जंगलमें निवास करता है।' यों कहकर उन पापियोंने मुनिश्रेष्ठ माण्डव्यको बाँध लिया। किन्तु उन कठोर स्वभाववाले

मनुष्योंसे न तो उन्होंने कुछ कहा और न उनकी ओर दृष्टिपात ही किया। जब गुप्तचर उन्हें बाँधकर राजाके पास ले गये तो राजाने कहा—'आज मुझे चोर मिला है। तुमलोग इसे नगरके निकटवर्ती प्रवेशद्वारके मार्गपर ले जाओ और चोरके लिये जो नियत दण्ड है, वह इसे दो।' उन्होंने माण्डव्य मुनिको वहाँ ले जाकर मार्गमें गड़े हुए शूलपर रख दिया। वह शूल मुनिके गुदाद्वारसे प्रविष्ट होकर मस्तकके पार हो गया। उनका सारा शरीर शूलसे बिंध गया। इसी बीच आधी रातके घोर अन्धकारमें जब कि आकाशमें घटाएँ घिरी हुई थीं, वह पतिव्रता ब्राह्मणी अपने पतिको पीठपर बिठाकर वेश्याके घर जा रही थी। वह मुनिके निकटसे होकर निकली, अतः उस कोढ़ीका शरीर माण्डव्य मुनिके शरीरसे छू गया। कोढ़ीके संसर्गसे उनकी समाधि भंग हो गयी। वे कुपित होकर बोले—'जिसने इस समय मुझे गाढ़ वेदनाका अनुभव करानेवाली कष्टमय अवस्थामें पहुँचा दिया, वह सूर्योदय होते-होते भस्म हो जाय।'

माण्डव्यके इतना कहते ही वह कोढ़ी पृथ्वीपर गिर पड़ा, तब पतिव्रताने कहा—'आजसे सूर्यका उदय ही न हो।' यों कहकर वह अपने पतिको घर ले गयी और एक सुन्दर शय्यापर सुला स्वयं उसे थामकर बैठी रही। उधर मुनिश्रेष्ठ माण्डव्य उस कोढ़ीको शाप दे अपने अभीष्ट स्थानको चले गये। इस प्रकार तीन दिन बीत गये। सूर्योदय नहीं हुआ। चराचर प्राणियोंसहित समस्त त्रिलोकी व्यथित हो उठी। यह देख समस्त देवता इन्द्रको आगे करके ब्रह्माजीके पास गये और सूर्योदय न होनेका समाचार निवेदन करते हुए बोले—'भगवन्! सूर्यके उदय न होनेका क्या कारण है? यह हमारी समझमें नहीं आता। इस समय आप जो उचित हो, करें।' उनकी बात सुनकर ब्रह्माजीने पतिव्रता ब्राह्मणी और माण्डव्य मुनिका सारा वृत्तान्त कह सुनाया। तदनन्तर देवता विमानोंपर आरूढ़ हो प्रजापतिको आगे करके शीघ्र ही पृथ्वीपर उस कोढ़ी ब्राह्मणके घरके पास गये। उनके विमानोंकी कान्ति तथा

मुनियोंके तेजसे पतिव्रताके घरके भीतर सैकड़ों सूर्योंका-सा प्रकाश छा गया। उस समय हंसके समान तेजस्वी विमानोंद्वारा आये हुए देवताओंको पतिव्रताने देखा। वह [अपने पतिके समीप] लेटी हुई थी। ब्रह्माजीने उसे सम्बोधित करके कहा—'माता! सम्पूर्ण देवताओं-ब्राह्मणों और गौ आदि प्राणियोंकी जिससे मृत्यु होनेकी सम्भावना है—ऐसा कार्य तुम्हें क्योंकर पसंद आया? सूर्योदयके विरुद्ध जो तुम्हारा क्रोध है, उसे त्याग दो।'

पतिव्रता बोली—भगवन्! एकमात्र पति ही मेरे गुरु हैं। ये मेरे लिये सम्पूर्ण लोकोंसे बढ़कर हैं। सूर्योदय होते ही मुनिके शापसे इनकी मृत्यु हो जायगी, इसी हेतुसे मैंने सूर्यको शाप दिया है। क्रोध, मोह, लोभ, मात्सर्य अथवा कामके वशमें होकर मैंने ऐसा नहीं किया है।

ब्रह्माजीने कहा—माता! जब एककी मृत्युसे तीनों लोकोंका हित हो रहा है, ऐसी दशामें तुम्हें बहुत अधिक पुण्य होगा।

पतिव्रता बोली—पतिका त्याग करके मुझे आपका परम कल्याणमय सत्यलोक भी अच्छा नहीं लगता।

ब्रह्माजीने कहा—देवि! सूर्योदय होनेपर जब सारी त्रिलोकी स्वस्थ हो जायगी, तब तुम्हारे पतिके भस्म हो जानेपर भी मैं तुम्हारा कल्याण-साधन करूँगा। हमलोगोंके आशीर्वादसे यह कोढ़ी ब्राह्मण कामदेवके समान सुन्दर हो जायगा।

ब्रह्माजीके यों कहनेपर उस सतीने क्षणभर कुछ विचार किया, उसके बाद 'हाँ' कहकर उसने स्वीकृति दे दी। फिर तो तत्काल सूर्योदय हुआ और मुनिके शापसे पीड़ित ब्राह्मण राखका ढेर हो गया। फिर उस राखसे कामदेवके समान सुन्दर रूप धारण किये वह ब्राह्मण प्रकट हुआ। यह देखकर समस्त पुरवासी बड़े विस्मयमें पड़े। देवता प्रसन्न हो गये। सब लोगोंका चित्त पूर्ण स्वस्थ हुआ। उस समय स्वर्गलोकसे सूर्यके समान तेजस्वी एक विमान आया और वह साध्वी अपने पतिके साथ उसपर बैठकर देवताओंके साथ स्वर्गको चली गयी।

शुभा भी ऐसी ही पतिव्रता है; इसलिये वह मेरे समान है। उस सतीत्वके प्रभावसे ही वह भूत, भविष्य और वर्तमान—तीनों कालोंकी बात जानती है। जो मनुष्य इस परम उत्तम पुण्यमय उपाख्यानको लोकमें सुनायेगा, उसके जन्म-जन्मके किये हुए पाप नष्ट हो जायँगे।

ब्राह्मणने पूछा—भगवन्! माण्डव्य मुनिके शरीरमें शूलका आघात कैसे लगा? तथा पतिव्रता स्त्रीके पतिको कोढ़का रोग क्यों हुआ?

भगवान् श्रीविष्णु बोले—माण्डव्य मुनि जब बालक थे, तब उन्होंने अज्ञान और मोहवश एक झींगुरके गुदादेशमें तिनका डालकर छोड़ दिया था। यद्यपि उन्हें उस समय धर्मका ज्ञान नहीं था, तथापि उस दोषके कारण उन्हें एक दिन और रात वैसा कष्ट भोगना पड़ा, किन्तु माण्डव्य मुनिने समाधिस्थ होनेके कारण शूलाघातजनित वेदनाका पूरी तरह अनुभव नहीं किया। इसी प्रकार पतिव्रताके पतिने भी पूर्वजन्ममें एक कोढ़ी ब्राह्मणका वध किया था, इसीसे उसके शरीरमें दुर्गन्धयुक्त कोढ़का रोग उत्पन्न हो गया था। किन्तु उसने ब्राह्मणको चार गौरीदान और तीन कन्यादान किये थे। इसीसे उसकी स्त्री पतिव्रता हुई। उस पत्नीके कारण ही वह मेरी समताको प्राप्त हुआ।

ब्राह्मणने कहा—नाथ! यदि पतिव्रताका ऐसा माहात्म्य है; तब तो जिस पुरुषकी भी स्त्री व्यभिचारिणी न हो उसे, स्वर्गकी प्राप्ति निश्चित है। सती स्त्रीसे सबका कल्याण होना चाहिये।

श्रीभगवान् बोले—ठीक है। संसारमें कुछ स्त्रियाँ ऐसी कुलटा होती हैं, जो सर्वस्व अर्पण करनेवाले पुरुषके प्रतिकूल आचरण करती हैं, उनमें जो सर्वथा अरक्षणीय हो—जिसकी दुराचारसे रक्षा करना असम्भव हो, ऐसी स्त्रीको तो मनसे भी स्वीकार नहीं करना चाहिये। जो नारी कामके वशीभूत हो जाती है, वह निर्धन, कुरूप, गुणहीन तथा नीच कुलके नौकर पुरुषको भी स्वीकार कर लेती है, मृत्युतकसे सम्बन्ध जोड़नेमें उसे हिचक नहीं होती। वह गुणवान्, कुलीन, अत्यन्त

धनी, सुन्दर और रतिकार्यमें कुशल पतिका भी परित्याग करके नीच पुरुषका सेवन करती है। विप्रवर! इस विषयमें उमा-नारद-संवाद ही दृष्टान्त है, क्योंकि नारदजी स्त्रियोंकी बहुत-सी चेष्टाएँ जानते हैं। नारद मुनि स्वभावसे ही संसारकी प्रत्येक बात जाननेकी इच्छा रखते हैं। एक बार वे अपने मनमें कुछ सोच-विचारकर पर्वतोंमें उत्तम कैलासगिरिपर गये। वहाँ उन महात्मा मुनिने पार्वतीजीको प्रणाम करके पूछा—'देवि! मैं कामिनियोंकी कुचेष्टाएँ जानना चाहता हूँ। मैं इस विषयमें बिलकुल अनजान हूँ और विनीतभावसे प्रश्न कर रहा हूँ; अतः आप मुझे यह बात बताइये।'

पार्वती देवीने कहा—नारद! युवती स्त्रियोंका चित्त सदा पुरुषोंमें ही लगा रहता है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। नारी घीसे भरे हुए घड़ेके समान है और पुरुष दहकते हुए अंगारेके समान; इसलिये घी और अग्निको एक स्थानपर नहीं रखना चाहिये।[१] जैसे मतवाले हाथीको महावत अंकुश और मुगदरकी सहायतासे अपने वशमें करता है, उसी प्रकार स्त्रियोंका रक्षक उन्हें दण्डके बलसे ही काबूमें रख सकता है। बचपनमें पिता, जवानीमें पति और बुढ़ापेमें पुत्र नारीकी रक्षा करता है। उसे कभी स्वतन्त्रता नहीं देनी चाहिये।[२] सुन्दरी स्त्रीको यदि उसकी इच्छाके अनुसार स्वतन्त्र छोड़ दिया जाय तो पर-पुरुषकी प्रार्थनासे अधीर होकर वह उसके आदेशके अनुसार व्यभिचारमें प्रवृत्त हो जाती है। जैसे तैयार की हुई रसोईपर दृष्टि न रखनेसे उसपर कौए और कुत्ते अधिकार जमा लेते हैं, उसी प्रकार युवती नारी स्वच्छन्द होनेपर व्यभिचारिणी हो जाती है। फिर उस कुलटाके संसर्गसे सारा कुल दूषित हो जाता

१-घृतकुम्भसमा नारी तप्तांगारसमः पुमान्। तस्माद् घृतं च वह्निं च ह्येकस्थाने न धारयेत्॥
(पद्मपु०, सृष्टिख० ४९। २१)

२-पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने। पुत्राश्च स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति॥
(पद्मपु०, सृष्टिख० ४९। २३)

है। पराये बीजसे उत्पन्न होनेवाला मनुष्य वर्णसंकर कहलाता है।* सदाचारिणी स्त्री पितृकुल और पतिकुल—दोनों कुलोंका सम्मान बढ़ाती हुई उन्हें कायम रखती है। साध्वी नारी अपने कुलका उद्धार करती और दुराचारिणी उसे नरकमें गिराती है। कहते हैं—संसारमें स्त्रीके ही अधीन स्वर्ग, कुल, कलंक, यश-अपयश, पुत्र-पुत्री और मित्र आदिकी स्थिति है। इसलिये विद्वान् पुरुष सन्तानकी इच्छासे विवाह करे। जो पापी पुरुष मोहवश किसी साध्वी स्त्रीको दूषित करके छोड़ देता है, वह उस स्त्रीकी हत्याका पाप भोगता हुआ नरकमें गिरता है। जो परायी स्त्रीके साथ बलात्कार करता अथवा उसे धनका लालच देकर फँसाता है, वह इस संसारमें स्त्री-हत्यारा कहलाता है और मरनेके बाद घोर नरकमें पड़ता है। परायी स्त्रीका अपहरण करके मनुष्य चाण्डाल-कुलमें जन्म लेता है। उसी प्रकार पतिके साथ वंचना करनेवाली स्त्री चिरकालतक नरक भोगकर कौएकी योनिमें जन्म लेती है और उच्छिष्ट एवं दुर्गन्धयुक्त पदार्थ खा-खाकर जीवन बिताती है। तदनन्तर, मनुष्य-योनिमें जन्म लेकर विधवा होती है। जो माता, गुरुपत्नी, ब्राह्मणी, राजाकी रानी या दूसरी किसी प्रभु-पत्नीके साथ समागम करता है, वह अक्षय नरकमें गिरता है। बहिन, भानजेकी स्त्री, बेटी, बेटेकी बहू, चाची, मामी, बुआ तथा मौसी आदि अन्यान्य स्त्रियोंके साथ समागम करनेपर भी कभी नरकसे उद्धार नहीं होता। यही नहीं, उसे ब्रह्महत्याका पाप भी लगता है तथा वह अंधा, गूँगा और बहरा होकर निरन्तर नीचे गिरता जाता है; उस अधःपतनसे उसका कभी बचाव नहीं हो पाता।

ब्राह्मणने पूछा—भगवन्! ऐसा पाप करके मनुष्यका उससे किस प्रकार उद्धार हो सकता है?

---

* अरक्षणाद्यथा पाकः श्वकाकवशगो वसेत्। तथैव युवती नारी स्वच्छन्दाद्दुष्टतां व्रजेत्॥
पुनरेव कुलं दुष्टं तस्याः संसर्गतो भवेत्। परबीजे नरो जातः स च स्याद्वर्णसंकरः॥
(पद्मपु०, सृष्टिख० ४९। २५-२६)

श्रीभगवान्‌ने कहा—उपर्युक्त स्त्रियोंके साथ समागम करनेवाला पुरुष लोहेकी स्त्री-प्रतिमा बनवाकर उसे आगमें खूब तपाये, फिर उसका गाढ़ आलिंगन करके प्राण त्याग दे और शुद्ध होकर परलोककी यात्रा करे। जो मनुष्य गृहस्थाश्रमका परित्याग करके मुझमें मन लगाता है और प्रतिदिन मेरे 'गोविन्द' नामका स्मरण करता है, उसके सब पापोंका नाश हो जाता है। उसके द्वारा की हुई हजारों ब्रह्महत्याएँ, सौ बार किया हुआ गुरुपत्नी-समागम, लाख बार किया हुआ पैष्टी मदिराका सेवन, सुवर्णकी चोरी, पापियोंके साथ चिरकालतक संसर्ग रखना—ये तथा और भी जितने बड़े-बड़े पाप एवं पातक हैं, वे सब मेरा नाम लेनेसे तत्काल नष्ट हो जाते हैं, ठीक उसी तरह जैसे अग्निके पास पहुँचनेपर रूईके ढेर जल जाते हैं। अतः मनुष्यको उचित है कि वह मेरे 'गोविन्द' नामका स्मरण करके पवित्र हो जाय। [परन्तु जो नामके भरोसे पाप करता है, नाम उसकी रक्षा कभी नहीं करता।] अथवा जो प्रतिदिन मुझ गोविन्दका कीर्तन और पूजन करते हुए गृहस्थाश्रममें निवास करता है, वह पापसे तर जाता है। तात! गंगाके रमणीय तटपर चन्द्रग्रहणकी मंगलमयी बेलामें करोड़ों गोदान करनेसे मनुष्यको जो फल मिलता है, उससे हजार गुना अधिक फल 'गोविन्द' का कीर्तन करनेसे प्राप्त होता है। कीर्तन करनेवाला मनुष्य मेरे वैकुण्ठधाममें सदा निवास करता है।* पुराणोंमें मेरी कथा सुननेसे मानव मेरी समानता प्राप्त करता है। जो पुराणकी कथा सुनाता है, उसे मेरा

---

* यो वै गृहाश्रमं त्यक्त्वा मच्चित्तो जायते नरः । नित्यं स्मरति गोविन्दं सर्वपापक्षयो भवेत्॥
ब्रह्महत्यायुतं तेन कृतं गुर्वंगनागमः । शतं शतसहस्रं च पैष्टीमद्यस्य भक्षणम्॥
स्वर्णादेर्हरणं चैव तेषां संसर्गकश्चिरम् । एतान्यन्यानि पापानि महान्ति पातकानि च॥
अग्निं प्राप्य यथा तूलं तृणमाशु प्रणश्यति । तस्मान्मन्नाम गोविन्दं स्मृत्वा पूतो भवेन्नरः॥
यो वा गृहाश्रमे तिष्ठेन्नित्यं गोविन्दघोषणम् । कृत्वा च पूजयित्वा च स पापात्संतरो भवेत्॥
भागीरथीतटे रम्ये खगस्य ग्रहणे शिवे । गवां कोटिप्रदानेन यत्फलं लभते नरः॥
तत्फलं समवाप्नोति सहस्रं चाधिकं च यत् । गोविन्दकीर्तने तात मत्पुरे चाक्षयं वसेत्॥
(पद्मपु०, सृष्टिख० ४९।५०—५६)

सायुज्य प्राप्त होता है; अतः प्रतिदिन पुराणका श्रवण करना चाहिये। पुराण धर्मोंका संग्रह है।

विप्रवर! अब मैं सती स्त्रियोंमें जो अत्यन्त उत्कृष्ट गुण होते हैं, उनका वर्णन करता हूँ। सती स्त्रीका वंश शुद्ध होता है। वहाँ सदा लक्ष्मी निवास करती हैं। सतीके पितृकुल और पतिकुल—दोनों कुलोंको तथा उसके स्वामीको भी स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है। जो स्त्रियाँ अपने जीवनका पूर्वकाल पुण्य-पाप-मिश्रित कर्मोंमें व्यतीत करके पीछे भी पतिव्रता होती हैं, उन्हें भी मेरे लोककी प्राप्ति हो जाती है। जो स्त्री अपने स्वामीका अनुगमन करती है, वह शराबी, ब्रह्महत्यारे तथा सब प्रकारके पापोंसे लदे हुए पतिको भी पापमुक्त करके अपने साथ स्वर्गमें ले जाती है। जो मरे हुए पतिके पीछे प्राण-त्याग करके जाती है, उसे स्वर्गकी प्राप्ति निश्चित है। जो नारी पतिका अनुगमन करती है, वह मनुष्यके शरीरमें जितने (साढ़े तीन करोड़) रोम होते हैं, उतने ही वर्षोंतक स्वर्गलोकमें निवास करती है। यदि पतिकी मृत्यु कहीं दूर हो जाय तो उसका कोई चिह्न पाकर जो स्त्री चिताकी अग्निमें प्राण-त्याग करती है, वह अपने पतिका पापसे उद्धार कर देती है। जो स्त्री पतिव्रता होती है, उसे चाहिये कि यदि पतिकी मृत्यु परदेशमें हो जाय तो उसका कोई चिह्न प्राप्त करे और उसे ही ले अग्निमें शयन करके स्वर्गलोककी यात्रा करे। यदि ब्राह्मण जातिकी स्त्री मरे हुए पतिके साथ चिताग्निमें प्रवेश करे तो उसे आत्मघातका दोष लगता है। जिससे न तो वह अपनेको और न अपने पतिको ही स्वर्गमें पहुँचा पाती है। इसलिये ब्राह्मण जातिकी स्त्री अपने मरे हुए पतिके साथ जलकर न मरे—यह ब्रह्माजीकी आज्ञा है। ब्राह्मणी विधवाको वैधव्य-व्रतका आचरण करना चाहिये। जो विधवा एकादशीका व्रत नहीं रखती, वह दूसरे जन्ममें भी विधवा ही होती है तथा प्रत्येक जन्ममें दुर्भाग्यसे पीड़ित रहती है। मछली-मांस खाने और व्रत न करनेसे वह चिरकालतक नरकमें रहकर फिर कुत्तेकी योनिमें जन्म लेती है। जो कुलनाशिनी

विधवा दुराचारिणी होकर मैथुन कराती है, वह नरक-यातना भोगनेके पश्चात् दस जन्मोंतक गीधिनी होती है, फिर दो जन्मोंतक लोमड़ी होकर पीछे मनुष्ययोनिमें जन्म लेती है। उसमें भी बाल-विधवा होकर दासीभावको प्राप्त होती है।

ब्राह्मणने कहा—भगवन्! यदि आपका मुझपर अनुग्रह है तो अब कन्यादानके फलका वर्णन कीजिये। साथ ही उसकी यथार्थ विधि भी बतलाइये।

श्रीभगवान् बोले—ब्रह्मन्! रूपवान्, गुणवान्, कुलीन, तरुण, समृद्धिशाली और धन-धान्यसे सम्पन्न वरको कन्यादान करनेका जो फल होता है, उसे श्रवण करो। जो मनुष्य आभूषणोंसे युक्त कन्याका दान करता है, उसके द्वारा पर्वत, वन और काननोंसहित सम्पूर्ण पृथ्वीका दान हो जाता है। जो पिता कन्याका शुल्क लेकर खाता है, वह नरकमें पड़ता है। जो मूर्ख अपनी पुत्रीको बेच देता है, उसका कभी नरकसे उद्धार नहीं होता। जो लोभवश अयोग्य पुरुषको कन्यादान देता है, वह रौरव नरकमें पड़कर अन्तमें चाण्डाल होता है।* इसीसे विद्वान् पुरुष दामादसे शुल्क लेनेका कभी विचार भी मनमें नहीं लाते। अपनी ओरसे दामादको जो कुछ दिया जाता है, वह अक्षय हो जाता है। पृथ्वी, गौ, सोना, धन-धान्य और वस्त्रादि जो कुछ दामादको दहेजके रूपमें दिया जाता है, वह अक्षय फलको देनेवाला होता है। जैसे कटी हुई डोर घड़ेके साथ स्वयं भी कुएँमें डूब जाती है, उसी प्रकार यदि दाता संकल्प किये हुए दानको भूल जाता है और दान लेनेवाला पुरुष फिर उसे याद दिलाकर माँगता नहीं तो वे दोनों नरकमें पड़ते हैं। सात्त्विक पुरुषको उचित है कि वह जामाताको दहेजमें देनेके लिये निश्चित की हुई

---

* यः पुनः शुल्कमश्नाति स याति नरकं नरः। विक्रीत्वा चात्मजां मूढो नरकान्न निवर्तते॥
लोभादसदृशे पुंसि कन्यां यस्तु प्रयच्छति। रौरवं नरकं प्राप्य चाण्डालत्वं च गच्छति॥
(पद्मपु०, सृष्टिख० ४९।९०-९१)

सभी वस्तुएँ अवश्य दे डाले। न देनेपर पहले तो वह नरकमें पड़ता है; फिर प्रतिग्रह लेनेवालेके दासके रूपमें जन्म ग्रहण करता है।

जो बहुत खाता हो, अधिक दूर रहता हो, अत्यधिक धनवान् हो, जिसमें अधिक दुष्टता हो, जिसका कुल उत्तम न हो तथा जो मूर्ख हो—इन छः मनुष्योंको कन्या नहीं देनी चाहिये। इसी प्रकार अतिवृद्ध, अत्यन्त दीन, रोगी, अति निकट रहनेवाले, अत्यन्त क्रोधी और असन्तुष्ट—इन छः व्यक्तियोंको भी कन्यादान नहीं करना चाहिये। इन्हें कन्या देकर मनुष्य नरकमें पड़ता है। धनके लोभसे या सम्मान मिलनेकी आशासे जो कन्या देता है, या एक कन्या दिखाकर दूसरीका विवाह कर देता है, वह भी नरकगामी होता है। जो प्रतिदिन इस परम उत्तम पुण्यमय उपाख्यानका श्रवण करता है, उसके जन्म-जन्मके पाप नष्ट हो जाते हैं।

तुलाधारके सत्य और समताकी प्रशंसा, सत्यभाषणकी महिमा, लोभ-त्यागके विषयमें एक शूद्रकी कथा और मूक चाण्डाल आदिका परमधामगमन

ब्राह्मणने कहा—प्रभो! यदि मुझपर आपकी कृपा हो तो अब तुलाधारके चरित्र और अनुपम प्रभावका पूरा-पूरा वर्णन कीजिये।

श्रीभगवान् बोले—जो सत्यका पालन करते हुए लोभ और दोषबुद्धिका त्याग करके प्रतिदिन कुछ दान करता है, उसके द्वारा मानो नित्यप्रति उत्तम दक्षिणासे युक्त सौ यज्ञोंका अनुष्ठान होता रहता है। सत्यसे सूर्यका उदय होता है, सत्यसे ही वायु चलती रहती है, सत्यके ही प्रभावसे समुद्र अपनी मर्यादाका उल्लंघन नहीं करता और भगवान् कच्छप इस पृथ्वीको अपनी पीठपर धारण किये रहते हैं। सत्यसे ही तीनों लोक और समस्त पर्वत टिके हुए हैं। जो सत्यसे भ्रष्ट हो जाता है, उस प्राणीको निश्चय ही नरकमें निवास करना पड़ता है। जो सत्य वाणी और कार्यमें सदा संलग्न रहता है, वह इसी शरीरसे भगवान्के धाममें जाकर भगवत्स्वरूप हो जाता है। सत्यसे ही समस्त ऋषि-मुनि मुझे प्राप्त होकर शाश्वत गतिमें स्थित हुए हैं। सत्यसे ही राजा युधिष्ठिर सशरीर स्वर्गमें चले गये।* उन्होंने समस्त शत्रुओंको जीतकर धर्मके अनुसार लोकका पालन किया। अत्यन्त दुर्लभ एवं विशुद्ध राजसूय यज्ञका अनुष्ठान किया। वे प्रतिदिन चौरासी हजार ब्राह्मणोंको भोजन

---

* सत्येनोदयते सूरो वाति वातस्तथैव च। न लङ्घयेत् समुद्रस्तु कूर्मो वा धरणीं यथा॥
सत्येन लोकास्तिष्ठन्ति सर्वे च वसुधाधराः। सत्याद्भ्रष्टोऽथ यः सत्त्वोऽप्यधोवासी भवेद् ध्रुवम्॥
सत्यवाचि रतो यस्तु सत्यकार्यरतः सदा। सशरीरेण स्वर्लोकमागत्याच्युततां व्रजेत्॥
सत्येन मुनयः सर्वे मां च गत्वा स्थिराःस्थिताः। सत्याद् युधिष्ठिरो राजा सशरीरो दिवं गतः॥
(पद्मपु०, सृष्टिख० ५०। ३—६)

कराते और उनकी इच्छाके अनुसार पर्याप्त धन दान करते थे। जब यह जान लेते कि इनमेंसे प्रत्येक ब्राह्मणकी दरिद्रता दूर हो चुकी है, तभी उस ब्राह्मण-समुदायको विदा करते थे। यह सब उनके सत्यका ही प्रभाव था। राजा हरिश्चन्द्र सत्यका आश्रय लेनेसे ही वाहन, परिवार तथा अपने विशुद्ध शरीरके साथ सत्यलोकमें प्रतिष्ठित हैं। इनके सिवा और भी बहुत-से राजा, सिद्ध, महर्षि, ज्ञानी और यज्ञकर्ता हो चुके हैं, जो कभी सत्यसे विचलित नहीं हुए। अतः लोकमें जो सत्यपरायण है, वही संसारका उद्धार करनेमें समर्थ होता है। महात्मा तुलाधार सत्यभाषणमें स्थित हैं। सत्य बोलनेके कारण ही इस जगत्में उनकी समानता करनेवाला दूसरा कोई नहीं है। ये तुलाधार कभी झूठ नहीं बोलते। महँगी और सस्ती सब प्रकारकी वस्तुओंके खरीदने-बेचनेमें ये बड़े बुद्धिमान् हैं।

विशेषतः साक्षीका सत्य वचन ही उत्तम माना गया है। कितने ही साक्षी सत्यभाषण करके अक्षय स्वर्गको प्राप्त कर चुके हैं। जो वक्ता विद्वान् सभामें पहुँचकर सत्य बोलता है, वह ब्रह्माजीके धामको, जो अन्यान्य यज्ञोंद्वारा दुर्लभ है, प्राप्त होता है। जो सभामें सत्यभाषण करता है, उसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। लोभ और द्वेषवश झूठ बोलनेसे मनुष्य रौरव नरकमें पड़ता है। तुलाधार सबके साक्षी हैं; वे मनुष्योंमें साक्षात् सूर्य ही हैं। विशेष बात यह है कि लोभका परित्याग कर देनेके कारण मनुष्य स्वर्गमें देवता होता है।

एक महान् भाग्यशाली शूद्र था, जो कभी लोभमें नहीं पड़ता था। वह साग खाकर, बाजारसे अन्नके दाने चुनकर तथा खेतोंसे धानकी बालें बीनकर बड़े दुःखसे जीवन-निर्वाह करता था। उसके पास दो फटे-पुराने वस्त्र थे तथा वह अपने हाथोंसे ही पात्रका काम लेता था। उसे कभी किसी वस्तुका लाभ नहीं हुआ, तथापि वह पराया धन नहीं लेता था। एक दिन मैं उसकी परीक्षा करनेके लिये दो नवीन वस्त्र लेकर गया और नदीके तीरपर एक कोनेमें उन्हें आदरपूर्वक रखकर

अन्यत्र जा खड़ा हुआ। शूद्रने उन दोनों वस्त्रोंको देखकर भी मनमें लोभ नहीं किया और यह समझकर कि किसी औरके पड़े होंगे चुपचाप घर चला गया। तब यह सोचकर कि बहुत थोड़ा लाभ होनेके कारण ही उसने इन वस्त्रोंको नहीं लिया होगा। मैंने गूलरके फलमें सोनेका टुकड़ा डालकर उसे वहीं रख दिया। मगध प्रदेश, नदीका तट और कोनेका निर्जन स्थान—ऐसी जगह पहुँचकर उसने उस अद्‌भुत फलको देखा। उसपर दृष्टि पड़ते ही वह बोल उठा—'बस-बस; यह कोई कृत्रिम विधान दिखायी देता है। इस समय इस फलको ग्रहण कर लेनेपर मेरी अलोभवृत्ति नष्ट हो जायगी। इस धनकी रक्षा करनेमें बड़ा कष्ट होता है। यह अहंकारका स्थान है। जितना ही लाभ होता है, उतना ही लोभ बढ़ता जाता है। लाभसे ही लोभकी उत्पत्ति होती है। लोभसे ग्रस्त मनुष्यको सदा ही नरकमें रहना पड़ता है। यदि यह गुणहीन द्रव्य मेरे घरमें रहेगा तो मेरी स्त्री और पुत्रोंको उन्माद हो जायगा। उन्माद कामजनित विकार है। उससे बुद्धिमें भ्रम हो जाता है, भ्रमसे मोह और अहंकारकी उत्पत्ति होती है। उनसे क्रोध और लोभका प्रादुर्भाव होता है। इन सबकी अधिकता होनेपर तपस्याका नाश हो जायगा। तपस्याका क्षय हो जानेपर चित्तको मोहमें डालनेवाला मालिन्य पैदा होगा। उस मलिनतारूप साँकलमें बँध जानेपर मनुष्य फिर ऊपर नहीं उठ सकता।'

यह विचारकर वह शूद्र उस फलको वहीं छोड़ घर चला गया। उस समय स्वर्गस्थ देवता प्रसन्नताके साथ 'साधु-साधु' कहकर उसकी प्रशंसा करने लगे। तब मैं एक क्षपणकका रूप धारण करके उसके घरके पास गया और लोगोंको उनके भाग्यकी बातें बताने लगा। विशेषतः भूतकालकी बात बताया करता था, फिर लोगोंके बारम्बार आने-जानेसे यह समाचार सब ओर फैल गया। यह सुनकर उस शूद्रकी स्त्री भी मेरे पास आयी और अपने भाग्यका कारण पूछने लगी। तब मैंने तुरन्त ही उसके मनकी बात बता दी और एकान्तमें स्थित होकर

कहा—'महाभागे! विधाताने आज तेरे लिये बहुत धन दिया था, किन्तु तेरे पतिने मूर्खकी भाँति उसका परित्याग कर दिया है। तेरे घरमें धनका बिलकुल अभाव है। अतः जबतक तेरा पति जीवित रहेगा, तबतक उसे दरिद्रता ही भोगनी पड़ेगी—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। माता! तू शीघ्र ही अपने घर जाकर पतिसे उस धनके विषयमें पूछ।' इस मंगलमय वचनको सुनकर वह अपने पतिके पास गयी और उस दुःखद वृत्तान्तकी चर्चा करने लगी। उसकी बातको सुनकर शूद्रको बड़ा विस्मय हुआ। वह कुछ सोचकर पत्नीको साथ लिये मेरे पास आया और एकान्तमें मुझसे बोला—'क्षपणक! बताओ, तुम क्या कहते थे?'

क्षपणक बोला—तात! तुम्हें प्रत्यक्ष धन प्राप्त हुआ था; फिर भी तुमने अवज्ञापूर्वक तिनकेकी भाँति उसका त्याग कर दिया। ऐसा क्यों किया? जान पड़ता है तुम्हारे भाग्यमें भोग नहीं बदा है। धनके अभावमें तुम्हें जन्मसे लेकर मृत्युतक अपने और बन्धु-बान्धवोंके दुःख देखने पड़ेंगे; प्रतिदिन मृतकोंकी-सी अवस्था भोगनी पड़ेगी। इसलिये शीघ्र ही उस धनको ग्रहण करो और निष्कण्टक भोग भोगो।

शूद्रने कहा—क्षपणक! मुझे धनकी इच्छा नहीं है। धन संसार-बन्धनमें डालनेवाला एक जाल है। उसमें फँसे हुए मनुष्यका फिर उद्धार नहीं होता। इस लोक और परलोकमें भी धनके जो दोष हैं, उन्हें सुनो। धन रहनेपर चोर, बन्धु-बान्धव तथा राजासे भी भय प्राप्त होता है। सब मनुष्य [उस धनको हड़प लेनेके लिये] धनी व्यक्तिको मार डालनेकी अभिलाषा रखते हैं; फिर धन कैसे सुखद हो सकता है? धन प्राणोंका घातक और पापका साधक है। धनीका घर काल एवं कामादि दोषोंका निकेतन बन जाता है। अतः धन दुर्गतिका प्रधान कारण है।

क्षपणक बोला—जिसके पास धन होता है, उसीको मित्र मिलते हैं। जिसके पास धन है, उसके सभी भाई-बन्धु हैं। कुल, शील, पाण्डित्य, रूप, भोग-यश और सुख—ये सब धनवान्‌को ही प्राप्त होते

हैं। धनहीन मनुष्यको तो उसके स्त्री-पुत्र भी त्याग देते हैं; फिर उसे मित्रोंकी प्राप्ति कैसे हो सकती है। जो जन्मसे दरिद्र हैं, वे धर्मका अनुष्ठान कैसे कर सकते हैं। स्वर्गप्राप्तिमें उपकारक जो सात्त्विक यज्ञकार्य तथा पोखरे खुदवाना आदि कार्य हैं, वे भी धनके अभावमें नहीं हो सकते। दान संसारके लिये स्वर्गकी सीढ़ी है; किन्तु निर्धन व्यक्तिके द्वारा उनकी भी सिद्धि होनी असम्भव है। व्रत आदिका पालन, धर्मोपदेश आदिका श्रवण, पितृ-यज्ञ आदिका अनुष्ठान तथा तीर्थ-सेवन—ये शुभ कर्म धनहीन मनुष्यके किये नहीं हो सकते। रोगोंका निवारण, पथ्यका सेवन, औषधोंका संग्रह, अपने शरीरकी रक्षा तथा शत्रुओंपर विजय आदि कार्य भी धनसे ही सिद्ध होते हैं। इसीलिये जिसके पास बहुत धन हो, उसीको इच्छानुसार भोग प्राप्त हो सकते हैं। धन रहनेपर तुम दानसे ही शीघ्र स्वर्गकी प्राप्ति कर सकते हो।

शूद्रने कहा—कामनाओंका त्याग करनेसे ही समस्त व्रतोंका पालन हो जाता है। क्रोध छोड़ देनेसे तीर्थोंका सेवन हो जाता है। दया ही जपके समान है। सन्तोष ही शुद्ध धन है, अहिंसा ही सबसे बड़ी सिद्धि है, शिलोञ्छवृत्ति ही उत्तम जीविका है। सागका भोजन ही अमृतके समान है। उपवास ही उत्तम तपस्या है। संतोष ही मेरे लिये बहुत बड़ा भोग है। कौड़ीका दान ही मुझ-जैसे व्यक्तिके लिये महादान है, परायी स्त्रियाँ माता और पराया धन मिट्टीके ढेलेके समान है। परस्त्री सर्पिणीके समान भयंकर है, यही सब मेरा यज्ञ है। गुणनिधे! इसी कारण मैं उस धनको नहीं ग्रहण करता। यह मैं सच-सच बता रहा हूँ। कीचड़ लगाकर धोनेकी अपेक्षा दूरसे उसका स्पर्श न करना ही अच्छा है।

श्रीभगवान् कहते हैं—नरश्रेष्ठ! उस शूद्रके इतना कहते ही सम्पूर्ण देवता उसके शरीर और मस्तकपर फूलोंकी वर्षा करने लगे। देवताओंके नगारे बज उठे। गन्धर्वोंका गान होने लगा। तुरन्त ही

आकाशसे विमान उतर आया। देवताओंने कहा—'धर्मात्मन्! इस विमानपर बैठो और सत्यलोकमें चलकर दिव्य भोगोंका उपभोग करो। तुम्हारे उपभोगकालका कोई परिमाण नहीं है—अनन्तकालतक तुम्हें पुण्योंका फल भोगना है।' देवगणोंके यों कहनेपर शूद्र बोला—'इस क्षपणकको ऐसा ज्ञान, ऐसी चेष्टा और इस प्रकार भाषणकी शक्ति कैसे प्राप्त हुई? इसके रूपमें भगवान् विष्णु, शिव, ब्रह्मा, शुक्र अथवा बृहस्पति इनमेंसे तो कोई नहीं हैं? अथवा मुझे छलनेके लिये साक्षात् धर्म ही तो यहाँ नहीं आये हैं?' शूद्रके ऐसे वचन सुनकर क्षपणकके रूपमें उपस्थित हुआ मैं हँसकर बोला—'महामुने! मैं साक्षात् विष्णु हूँ, तुम्हारे धर्मको जाननेके लिये मैं यहाँ आया था, अब तुम अपने परिवारसहित स्वर्गको जाओ।'

तदनन्तर वह शूद्र दिव्य आभूषण और दिव्य वस्त्रोंसे सुशोभित हो सहसा परिवारसहित स्वर्गको चला गया। इस प्रकार उस शूद्र-परिवारके सब लोग लोभ त्याग देनेके कारण स्वर्ग सिधारे। बुद्धिमान् तुलाधार धर्मात्मा हैं, वे सत्यधर्ममें प्रतिष्ठित हैं। इसीलिये देशान्तरमें होनेवाली बातें भी उन्हें ज्ञात हो जाती हैं। तुलाधारके समान प्रतिष्ठित व्यक्ति देवलोकमें भी नहीं है। जो मनुष्य सब धर्मोंमें प्रतिष्ठित होकर इस पवित्र उपाख्यानका श्रवण करता है, उसके जन्म-जन्मके पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं। एक बारके पाठसे उसे सब यज्ञोंका फल मिल जाता है। वह लोकमें श्रेष्ठ और देवताओंका भी पूज्य होता है।

व्यासजी कहते हैं—तदनन्तर, मूक चाण्डाल आदि सभी धर्मात्मा परमधाम जानेकी इच्छासे भगवान्के पास आये। उनके साथ उनकी स्त्रियाँ तथा अन्यान्य परिकर भी थे। इतना ही नहीं, उनके घरके आस-पास जो छिपकलियाँ तथा नाना प्रकारके कीड़े-मकोड़े थे, वे देवस्वरूप होकर उनके पीछे-पीछे जानेको उपस्थित थे। उस समय देवता, सिद्ध और महर्षिगण 'धन्य-धन्य' के नारे लगाते हुए फूलोंकी वर्षा करने लगे। विमानों और वनोंमें देवताओंके नगाड़े बजने लगे। वे सब महात्मा

अपने-अपने विमानपर आरूढ़ हो विष्णुधामको पधारे। ब्राह्मण नरोत्तमने यह अद्‌भुत दृश्य देखकर श्रीजनार्दनसे कहा—'देवेश! मधुसूदन!! मुझे कोई उपदेश दीजिये।'

श्रीभगवान् बोले—तात! तुम्हारे माता-पिताका चित्त शोकसे व्याकुल हो रहा है; उनके पास जाओ। उनकी यत्नपूर्वक आराधना करके तुम शीघ्र ही मेरे धाममें जाओगे। माता-पिताके समान देवता देवलोकमें भी नहीं हैं। उन्होंने शैशवकालमें तुम्हारे घिनौने शरीरका सदा पालन किया है। उसका पोषण करके बढ़ाया है। तुम अज्ञान-दोषसे युक्त थे, माता-पिताने तुम्हें सज्ञान बनाया है। चराचर प्राणियोंसहित समस्त त्रिलोकीमें भी उनके समान पूज्य कोई नहीं है।

व्यासजी कहते हैं—तदनन्तर देवगण मूक चाण्डाल, पतिव्रता शुभा, तुलाधार वैश्य, सज्जनाद्रोहक और वैष्णव संत—इन पाँचों महात्माओंको साथ ले प्रसन्नतापूर्वक भगवान्‌की स्तुति करते हुए वैकुण्ठधाममें पधारे। वे सभी अच्युतस्वरूप होकर सम्पूर्ण लोकोंके ऊपर स्थित हुए। नरोत्तम ब्राह्मणने भी यत्नपूर्वक माता-पिताकी आराधना करके थोड़े कालमें ही कुटुम्बसहित भगवद्धामको प्राप्त किया। शिष्यगण! यह पाँच महात्माओंका पवित्र उपाख्यान मैंने तुम्हें सुनाया है। जो इसका पाठ अथवा श्रवण करेगा, उसकी कभी दुर्गति नहीं होगी। वह ब्रह्महत्या आदि पापोंसे कभी लिप्त नहीं हो सकता। मनुष्य करोड़ों गोदान करनेसे जिस फलको प्राप्त करता है, पुष्कर तीर्थ और गंगा नदीमें स्नान करनेसे उसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, वही फल एक बार इस उपाख्यानके सुननेमात्रसे मिल जाता है।

॥ श्रीहरिः॥

परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके शीघ्र कल्याणकारी प्रकाशन

कोड	पुस्तक
683	तत्त्वचिन्तामणि
814	साधन-कल्पतरु (तेरह महत्त्वपूर्ण पुस्तकोंका संग्रह)
1597	चिन्ता-शोक कैसे मिटें?
1631	भगवान् कैसे मिलें?
1653	मनुष्य-जीवनका उद्देश्य
1681	भगवत्प्राप्ति कठिन नहीं
1666	कल्याण कैसे हो?
527	प्रेमयोगका तत्त्व
242	महत्त्वपूर्ण शिक्षा
528	ज्ञानयोगका तत्त्व
266	कर्मयोगका तत्त्व (भाग-१)
267	कर्मयोगका तत्त्व (भाग-२)
303	प्रत्यक्ष भगवद्दर्शनके उपाय
298	भगवान्‌के स्वभावका रहस्य
243	परम साधन—भाग-१
244	,, ,, भाग-२
245	आत्मोद्धारके साधन-भाग-१
335	अनन्यभक्तिसे भगवत्प्राप्ति
579	अमूल्य समयका सदुपयोग
246	मनुष्यका परम कर्तव्य (भाग-१)
247	,, ,, (भाग-२)
611	इसी जन्ममें परमात्मप्राप्ति
588	अपात्रको भी भगवत्प्राप्ति
1296	कर्णवासका सत्संग
1015	भगवत्प्राप्तिमें भावकी प्रधानता
248	कल्याणप्राप्तिके उपाय
249	शीघ्र कल्याणके सोपान
250	ईश्वर और संसार
519	अमूल्य शिक्षा
253	धर्मसे लाभ अधर्मसे हानि
251	अमूल्य वचन तत्त्वचिन्तामणि
252	भगवद्दर्शनकी उत्कण्ठा
254	व्यवहारमें परमार्थकी कला
255	श्रद्धा-विश्वास और प्रेम
258	तत्त्वचिन्तामणि
257	परमानन्दकी खेती
260	समता अमृत और विषमता विष
259	भक्ति-भक्त-भगवान्
256	आत्मोद्धारके सरल उपाय
261	भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान
262	रामायणके कुछ आदर्श पात्र
263	महाभारतके कुछ आदर्श पात्र
264	मनुष्य-जीवनकी सफलता—भाग-१
265	मनुष्य-जीवनकी सफलता—भाग-२
268	परमशान्तिका मार्ग—भाग-१
269	परमशान्तिका मार्ग—भाग-२
543	परमार्थ-सूत्र-संग्रह
1530	आनन्द कैसे मिले?
769	साधन नवनीत

कोड	पुस्तक
599	हमारा आश्चर्य
681	रहस्यमय प्रवचन
1021	आध्यात्मिक प्रवचन
1324	अमृत वचन
1409	भगवत्प्रेम-प्राप्तिके उपाय
1433	साधना पथ
1483	भगवत्पथ-दर्शन
1493	नेत्रोंमें भगवान्‌को बसा लें
1435	आत्मकल्याणके विविध उपाय
1529	सम्पूर्ण दु:खोंका अभाव कैसे हो?
1561	दु:खोंका नाश कैसे हो?
1587	जीवन-सुधारकी बातें
1022	निष्काम श्रद्धा और प्रेम
292	नवधा भक्ति
274	महत्त्वपूर्ण चेतावनी
273	नल-दमयन्ती
277	उद्धार कैसे हो?— ५१ पत्रोंका संग्रह
278	सच्ची सलाह— ८० पत्रोंका संग्रह
280	साधनोपयोगी पत्र
281	शिक्षाप्रद पत्र
282	पारमार्थिक पत्र
284	अध्यात्मविषयक पत्र
283	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ
1120	सिद्धान्त एवं रहस्यकी बातें
680	उपदेशप्रद कहानियाँ
891	प्रेममें विलक्षण एकता
958	मेरा अनुभव
1283	सत्संगकी मार्मिक बातें
1150	साधनकी आवश्यकता

कोड	पुस्तक
320	वास्तविक त्याग
285	आदर्श भ्रातृप्रेम
286	बालशिक्षा
287	बालकोंके कर्तव्य
272	स्त्रियोंके लिये कर्तव्य-शिक्षा
290	आदर्श नारी सुशीला
291	आदर्श देवियाँ
300	नारीधर्म
271	भगवत्प्रेमकी प्राप्ति कैसे हो?
293	सच्चा सुख और.......
294	संत-महिमा
295	सत्संगकी कुछ सार बातें
301	भारतीय संस्कृति तथा शास्त्रोंमें नारीधर्म
310	सावित्री और सत्यवान्
299	श्रीप्रेमभक्ति-प्रकाश— ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप
304	गीता पढ़नेके लाभ और त्यागसे भगवत्प्राप्ति— गजल-गीतासहित
623	धर्मके नामपर पाप
309	भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय- (कल्याणप्राप्तिकी कई युक्तियाँ)
311	परलोक और पुनर्जन्म एवं वैराग्य
306	धर्म क्या है? भगवान् क्या हैं?
307	भगवान्‌की दया (भगवत्कृपा एवं कुछ अमृत-कण)
316	ईश्वर-साक्षात्कारके लिये नाम-जप सर्वोपरि साधन है और सत्यकी शरणसे मुक्ति
314	व्यापार-सुधारकी आवश्यकता और हमारा कर्तव्य